मूल्य : रु. ६/-
अंक : १७२
अप्रैल : ०७
मौन सांसारिक एवं आध्यात्मिक शांति का स्रोत है।
सात्त्विक भोजन करें, मौन रहें।
बोलना ही पड़े तो सारगर्भित बोलें।
संत श्री आसारामजी आश्रम द्वारा प्रकाशित
ऋषि प्रसाद
हिन्दी

रामनगर जि. आणंद (गुज.) तथा जेसावाड़ा जि. दाहोद (गुज.) में निकाली गयी संकीर्तन यात्राएँ।

अमदावाद आश्रम तथा मणिनगर-अमदावाद में हवन।

पिंजौर जि. पंचकूला (हरि.) के विद्यार्थियों में तथा धनबाद (झारखंड) के गरीबों में वस्त्र-वितरण।

संतरामपुर जि. पंचमहाल (गुज.) तथा गांगडी जि. दाहोद (गुज.) में निःशुल्क प्राकृतिक चिकित्सा शिविर ।

वर्ष : १७ अंक : १७२ अप्रैल २००७ चैत्र-वैशाख वि.सं. २०६४ मूल्य : रु. ६/-

ऋषि प्रसाद

मासिक पत्रिका

किससे डरें, किससे नहीं ? २८

इस अंक में

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गाँधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा, श्रीनिवास

सदस्यता शुल्क

भारत में

(१) वार्षिक	: रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. २००/-
(४) आजीवन	: रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में

(१) वार्षिक	: रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक	: रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक	: रु. ३००/-
(४) आजीवन	: रु. ७५०/-

अन्य देशों में

(१) वार्षिक	: US$ 20
(२) द्विवार्षिक	: US$40
(३) पंचवार्षिक	: US$ 80
(४) आजीवन	: US$200

ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी)	वार्षिक	पंचवार्षिक
भारत में	१२०	५००
नेपाल, भूटान व पाक में	१७५	७५०
अन्य देशों में		

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
ashramindia@gmail.com
web-site : www.ashram.org

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें । पता-परिवर्तन हेतु एक माह पूर्व सूचित करें।

गुरु संदेश

किसीसे मिलने की इच्छा हो तो उससे ही मिलने का प्रयास कर, जिस एक के मिलने से सबसे एक साथ मिला जा सकता है ।
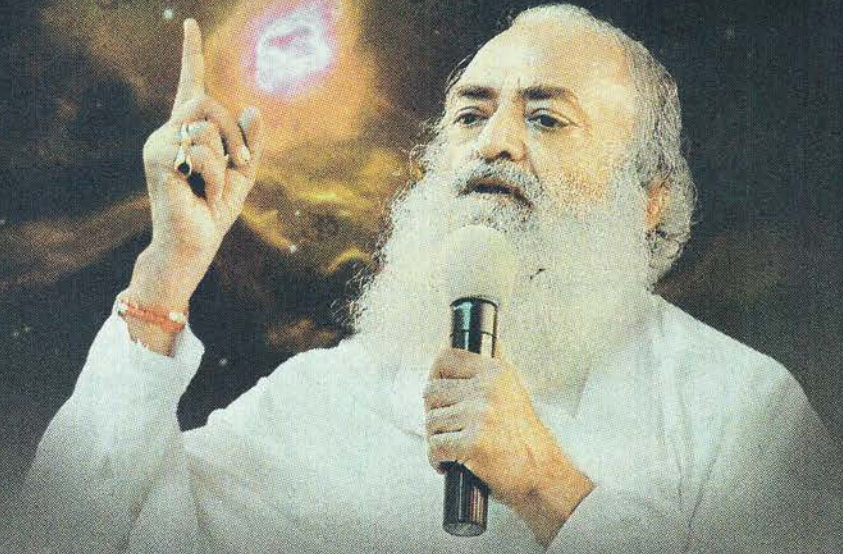
जानना है तो उसीको जान

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

बालक अपना हित इतना नहीं जानता जितना उसकी माँ जानती है । वह अपना हित इतना नहीं कर सकता, जितना उसकी माँ कर सकती है । ऐसे ही भगवान हमारा हित जितना जानते और कर सकते हैं, उतना हम जान और कर नहीं सकते । मैं सच कहता हूँ आपको ।

रामकृष्णदेव के पास बड़े-बड़े पंडित आते, सवाल पूछते तो रामकृष्ण कभी-कभी सोचते कि 'ये इतने बड़े पंडित हैं, इनको क्या उत्तर दूँ ?'

एक दिन उन्होंने माँ काली के आगे भावविभोर होकर प्रार्थना की कि 'माँ ! मुझे विद्या दे । इतने बड़े-बड़े पंडित आते हैं, मैं तो अनपढ़ हूँ माँ ! अब तू ही मुझे बता, मैं क्या करूँ ?' इस तरह रात्रि को प्रार्थना करके सो गये और सपना देखा कि जो पूर्वकाल में बड़े-बड़े विद्वान कहलाते थे, प्रसिद्ध थे, उनमें से कोई कूड़े-कर्कट के ढेर में कीड़ा बनकर खदबदा रहा है, कोई सूअर बनकर कुछ खाने का खोज रहा है ।

माँ ने कहा : ''यह अहं बढ़ाने की विद्या चाहिए तो ले, फिर ऐसा बनना पड़ेगा ।''

रामकृष्णदेव ने कहा : ''नहीं-नहीं माँ ! मैं कुछ बाहर का नहीं चाहता हूँ। जो तुझे देना है वही दे। जो तू चाहे वही कर।''

फिर ऐसा हुआ कि माँ ने गुरु से मिला दिया। गुरुकृपा से हृदय की ग्रंथि खुली। फिर कोई भी प्रश्न पूछा जाता तो ऐसा उत्तर मिलता कि बड़े-बड़े पंडित संतुष्ट हो जाते, चकरा जाते। तो भगवान जितना हमारा हित कर सकते हैं, उतना हम नहीं कर सकते, सोच भी नहीं सकते । मैं यहाँ बैठा हूँ और सत्संग कर रहा हूँ, यह मेरे बल से नहीं है, मेरी बुद्धि से नहीं है, मेरी योग्यता से नहीं है बिल्कुल सच बोल रहा हूँ। न मैं काशी जाकर पढ़ा, न मैं कॉलेज में जाकर पढ़ा, न मैं कहीं सत्संग करना सीखने गया । यह ईश्वरीय बल काम कर रहा है।

भगवान शिव माँ पार्वती को कहते हैं :

उमा राम सुभाउ जेहिं जाना ।
ताहि भजनु तजि भाव न आना ।

आप भगवान के स्वभाव को जान लो, बस । भगवान सत्स्वरूप हैं, चेतनस्वरूप हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, आनंदस्वरूप हैं, माधुर्यस्वरूप हैं और सबके परम हितैषी,

परम सुहृद हैं । भगवान के नाम में सबका अधिकार है, सबकी गति है ।

मेरे एक मित्र संत थे लालजी महाराज। वे स्कूल गये तो मास्टर ने कहा : ''एक लिख।''

लालजी महाराज बोले : ''एक लिख दिया।''

''अब दो लिख ।''

महाराज बोले : ''जब एक लिख दिया तो दो की क्या जरूरत ?'' फिर वे स्कूल नहीं गये, भजन में लग गये और इतनी ऊँची अवस्था को पाया कि बड़े-बड़े विद्वान उनकी बात सुनकर दंग रह जाते, ऐसी ऊँची बात बताते, ऐसे ऊँचे-ऊँचे प्रश्नों का हल बता देते थे ।

अध्यात्म विद्या ही सच्ची विद्या है, दूसरी सब विद्याएँ तो जानकारीमात्र हैं । ऐहिक विद्या तो पेट भरने की विद्या है, शरीर का अहं पोसने की विद्या है। आध्यात्मिक विद्या उस अहं को मिटाने की विद्या है।

अतः हे जीव ! यदि कुछ जानना हो तो उसे जान जिसे जानने के बाद फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। कुछ पाने की इच्छा हो तो उसे पा जिसे पाकर कुछ पाना बाकी नहीं रहता। किसीसे मिलने की इच्छा हो तो उससे ही मिलने का प्रयास कर जिस एक के मिलने से सबसे एक साथ मिला जा सकता है और वह आपके आत्मा के रूप में सदा आपके साथ है ।

पूरे विश्व का आधार परमात्मा है। वही परमात्मा आत्मा के रूप में हमारे साथ है । उस आत्मा को तात्त्विक रूप से जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है । अतः उसकी सिद्धि के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए । वह बुद्धिमान है, वह धन्य है, वह सौभाग्यशाली है जो अपने अंतरात्मा में आता है । परमात्म-नाम, परमात्म-ध्यान और परमात्म तत्त्व का ज्ञान बस कठिन है ? दूर है ? पराया है ? जो काम करने के लिए मनुष्य-जन्म मिला है वह काम कठिन है तो सरल क्या है ? जो कभी न छूटे, उसको जानना-पाना कठिन लग रहा है और जो छूटे बिना रहे नहीं उसीमें खपे जा रहे हैं ! रुक जाओ नश्वर में जानेवालो ! शाश्वत में आओ, धन्य हो जाओ !! ■

होती सफलता है वही !

मित्रो ! करो जो कार्य, सो सोचे बिना मत कीजिये ।
आरम्भ पीछे कीजिये, पहिले समझ सो लीजिये ॥
सोचे बिना, समझे बिना, होती सफलता है नहीं ।
होता जहाँ सुविचार है, होती सफलता है वहीं ॥
चिन्ता न कीजे चित्त में, मन में न शंका लाइये ।
निःशंक होकर कार्य कीजे, भय न किंचित् खाइये ॥
जो मूढ़ चिन्ताग्रस्त हो, सो कार्य कर सकता नहीं ।
चिन्ता जहाँ होती नहीं, होती सफलता है वहीं ॥
जब तक न पूरा कार्य हो, उत्साह से करते रहो ।
पीछे न हटिये एक तिल, आगे सदा बढ़ते रहो ॥
उत्साह बिनु जो कार्य हो, पूरा कभी होता नहीं ।
उत्साह होता है जहाँ, होती सफलता है वहीं ॥
आपत्तियाँ सब झेलिये, मत कष्ट से घबराइये ।
हो मृत्यु का भी सामना, हटिये नहीं मर जाइये ॥
कायर भगे रणक्षेत्र से, रणधीर हटता है नहीं ।
होती जहाँ है वीरता, होती सफलता है वहीं ॥
उपदेश लीजे प्राज्ञ से, मत अन्य को सिखलाइये।
व्याख्यान ही मत दीजिये, करि कार्य कुछ दिखलाइये॥
बकवाद करनेमात्र से, कुछ कार्य सरता है नहीं।
जैसा कहे वैसा करे, होती सफलता है वहीं ॥
तन में महा-आसक्ति हो, मन में हजारों कामना।
लोलुप सदा हो भोग में, चाहे जगत में नामना ॥
केवल उठाता बोझ ही, तो हाथ कुछ आता नहीं ।
होती जहाँ निष्कामना, होती सफलता है वहीं ॥
आसक्ति तन में हो नहीं, सब इन्द्रियाँ स्वाधीन हों ।
ना भोग की हो लालसा, मन ब्रह्म में तल्लीन हो ॥
होता विरागी नर सुखी, रागी सुखी होता नहीं ।
होता जहाँ वैराग्य है, होती सफलता है वहीं ॥
गुरु-शास्त्र से जब ज्ञान हो, पीछे उसीका ध्यान हो ।
हो ध्यान से वैराग्य पर, तब तत्त्व सम्यक् ज्ञान हो ॥
भोला ! बिना गुरु-शास्त्र है, सम्यक् ज्ञान नर पाता नहीं ।
होते जहाँ गुरु-शास्त्र हैं, होती सफलता है वहीं ॥

– श्री भोले बाबाजी

हमारी मति कैसी हो ?

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

कल्पना करो कि किसी तालाब के किनारे एक मछुआरा आया। कुछ मछलियाँ समझ गयीं कि यह कल आयेगा और जाल डाल के हमको पकड़ के ले जायेगा। मछुआरा गया और कुछ मछलियाँ कूदकर बड़े तालाब में चली गयीं । कुछ मछलियों ने सोचा, 'अभी तो गया है, कल आयेगा तब देखेंगे।' दूसरे दिन वह आया तो उसको देखकर कुछ और मछलियाँ फटाफट कूदकर बड़े तालाब में चली गयीं । बाकी की मछलियों ने सोचा कि 'कोई जरूरी नहीं कि आज ही हम पकड़ी जायें, देखते हैं क्या होता है।'

तो मछलियों के तीन प्रकार हुए : एक वे हुई जो पहले से ही चली गयीं। उनको बोलते हैं अनागत विधाता मति - जो आनेवाला दुःख है उसको समझकर पहले से ही छलाँग मार दी और दुःख से पार हो गयीं। दूसरे प्रकार की मछलियाँ जिस दिन मछुआरा आया उस दिन कूदीं। उनको बोलते हैं - प्रत्युत्पन्न मति। तीसरे प्रकार की मछलियाँ हैं दीर्घसूत्री मति - 'जब होगा तब देखा जायेगा।'

मृत्यु आयेगी, क्या तब तुम संसार के गड्ढे से बाहर निकलोगे ? कुछ बुद्धिमान पहले से निकल जाते हैं बंधन से । कोई ऐसे बुद्धू हैं कि जन्म-मृत्यु के चक्कर में पड़कर मरते रहते हैं - जन्मते रहते हैं, जन्मते रहते हैं-मरते रहते हैं... न अनागत विधाता मति, न प्रत्युत्पन्न मति, यह है दीर्घसूत्री मति !

'क्या करें, हम तो संसारी हैं।' - ऐसा करके अपना आयुष्य नष्ट नहीं करना। तुम सचमुच परिश्रम से कमाते हो और बहुत करकसर से जीते हो तो तुम्हारा अधिकार है परम ज्ञान पाने का, परम सुख पाने का। भगवान की बात मानकर सदा के लिए निर्दुःख हो जाना यह तुम्हारा अधिकार है।

जिनके पास अति साधन-सामग्री है उनको तो समय ही नहीं मिलता संसारी आपा-धापी से । जिनके पास मति और सामग्री का अत्यंत अभाव है वे उसीकी चिंता व परेशानी में समय गँवाते हैं। तुम मध्यम वर्ग में हो इसीलिए तुम इस तत्त्व को, इस बात को समझकर प्रत्युत्पन्न मति अथवा अनागत विधाता मति जल्दी बना सकते हो।

दुःख और मौत आये उसके पहले ही उछल के पहुँच जाओ वहाँ, जहाँ दुःख की कोई दाल नहीं गलती। जैसे जंगल में जब आग लगती है तब 'अभी आग दूर है परंतु कुछ समय बाद हमारे नजदीक आ जायेगी' - ऐसा सोचकर समझदार प्राणी सरोवर में जा खड़े होते हैं । दूसरे प्राणी ऐसे होते हैं, जब आग नजदीक आती है तब दौड़ के पहुँच जाते हैं और तीसरे प्रकार के प्राणी ऐसे होते हैं : 'अब हम क्या करें ? हाय-रे-हाय ! हमारा भाग्य ही ऐसा है।' और जल मरते हैं। तुम जल मरनेवाले प्राणियों में नहीं रहना। जब ताप, मुसीबत आये तब दौड़ने की अपेक्षा अभी से छलाँग मार लो। कैसे ?

प्रतिदिन सुबह नींद में से उठते ही पाँच-सात मिनट अपनी बुद्धि बुद्धिदाता परमेश्वर में शांत कर दो। जीव का विचार, जगत का विचार छोड़कर 'सारे विचारों के आधार जो परमेश्वर हैं, मैं उनका हूँ वे मेरे हैं। मैं परमेश्वर की जाति का हूँ, मेरा उनके साथ नित्य संबंध है। मुझे उनसे कुछ नश्वर नहीं चाहिए। मैं उनसे उन्हींकी कृपा चाहता हूँ। ॐ शांति...' इस प्रकार परमात्म-विश्रांति में डूब जाओ। फिर भ्रूमध्य में ध्यान करो। श्वास अंदर जाय 'ॐ'... बाहर आये गिनती करो, अंदर जाय 'राम'... बाहर आये गिनती... शांत... हम भगवान के हैं, भगवान हमारे हैं। शांत... फिर भगवान के साथ हाथ मिलाओ।

रामायण में आता है कि भगवान श्रीराम अपने हाथ से सुग्रीव का हाथ पकड़कर दबाते हैं और सौहार्द का आश्रय लेकर सुग्रीव का शोक दूर करते हैं। भगवान को कह दो कि 'मैं भी तुम्हारा हूँ।' भगवान से स्नेह से हाथ

(शेष पृष्ठ ०८ पर)

नारदजी द्वारा ध्यानोपदेश

'पद्म पुराण' में आता है : एक समय भगवान के प्रिय भक्त देवर्षि नारदजी सब लोकों में घूमते हुए मथुरा गये और वहाँ राजा अम्बरीष से मिले, जिनका चित्त श्रीकृष्ण की आराधना में लगा हुआ था ।

मुनिश्रेष्ठ नारदजी के पधारने पर साधु राजा अम्बरीष ने उनका सत्कार किया और श्रद्धा के साथ प्रश्न किया : ''मुने ! वेदों के वक्ता विद्वान पुरुष जिन्हें परम ब्रह्म कहते हैं, वे स्वयं भगवान कमलनयन नारायण ही हैं । जो सबसे परे हैं, जिनकी कोई मूर्ति न होने पर पर भी जो मूर्तिमान स्वरूप धारण करते हैं, जो सबके ईश्वर, व्यक्त और अव्यक्त रूप हैं, सनातन हैं, समस्त भूत जिनके स्वरूप हैं, जिनका चित्त द्वारा चिंतन नहीं किया जा सकता, ऐसे भगवान श्रीहरि का ध्यान किस प्रकार हो सकता है ?

जो अनन्य बुद्धि से उस सर्वमय ब्रह्म का ध्यान करता है, वह निराकार एवं अमृततुल्य पद को प्राप्त होता है ।

हे नारदजी ! इस संसार में यदि क्षण भर के लिए भी सत्संग मिल जाय तो वह मनुष्यों के लिए निधि का काम देता है क्योंकि उससे चारों पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं । भगवन् ! आपकी यात्रा सम्पूर्ण प्राणियों का मंगल करने के लिए होती है । जैसे माता-पिता का प्रत्येक विधान बालकों के हित के लिए ही होता है, उसी प्रकार भगवान के पथ पर चलनेवाले संत-महात्माओं की हर एक क्रिया जगत के जीवों का कल्याण करने के लिए ही होती है । अतः मुझे वैष्णव धर्म का उपदेश दीजिये ।''

नारदजी ने कहा : ''राजन् ! तुमने बहुत उत्तम प्रश्न किया है । श्रीहरि अणु, बृहत्, कृश, स्थूल, निर्गुण, गुणवान, महान, अजन्मा तथा जन्म-मृत्यु से परे हैं । उनका सदा ही ध्यान करना चाहिए ।

अब मैं भगवान विष्णु का ध्यान (रूप) बतलाता हूँ, जो अब तक किसीने देखा न होगा । वह नित्य, निर्मल एवं मोक्ष प्रदान करनेवाला ध्यान तुम सुनो । जैसे वायुहीन स्थान में रखा हुआ दीपक स्थिर भाव से अग्निमय स्वरूप धारण करके प्रज्वलित होता रहता है और घर के समूचे अंधकार का नाश करता है, उसी प्रकार ध्यानस्थ आत्मा सब प्रकार के दोषों से रहित, निरामय, निष्काम, निश्चल तथा वैर और मैत्री से शून्य हो जाता है । श्रीकृष्ण का ध्यान करनेवाला पुरुष शोक, दुःख, भय, द्वेष, लोभ, मोह तथा भ्रम आदि से और इन्द्रियों के विषयों से भी मुक्त हो जाता है । जैसे दीपक जलते रहने से तेल को सोख लेता है, उसी प्रकार ध्यान करने से कर्म का भी क्षय हो जाता है ।

भगवान शंकर आदि ने ध्यान दो प्रकार के बतलाये हैं : निर्गुण और सगुण । उनमें से प्रथम अर्थात् निर्गुण ध्यान का वर्णन सुनो । परमात्मा हाथ और पैर से रहित है तो भी वह सब कुछ ग्रहण करता व सर्वत्र जाता है । मुख के बिना ही भोजन करता और नाक के बिना ही सूँघता है । उसके कान नहीं हैं, तथापि वह सब कुछ सुनता है । वह

...ध्यानं समाचरेत्

सबका साक्षी और इस जगत का स्वामी है । रूपहीन होकर भी रूप से सम्बद्ध हो पाँचों इन्द्रियों के वशीभूत हुआ-सा प्रतीत होता है । वह समस्त लोकों का प्राण है, सम्पूर्ण चराचर जगत के प्राणी उसकी पूजा करते हैं । बिना जीभ के ही वह सब कुछ वेद-शास्त्रों के अनुकूल बोलता है । उसके त्वचा नहीं है, तथापि वह शीत-उष्ण आदि सब प्रकार के स्पर्श का अनुभव करता है । सत्ता और आनंद उसके स्वरूप हैं । वह जितेन्द्रिय, एकरूप, आश्रयविहीन, निर्गुण, ममतारहित, सर्वत्र व्यापक, सगुण, निर्मल, ओजस्वी, सबको वश में करनेवाला, सब कुछ देनेवाला और सर्वज्ञों में श्रेष्ठ है । इस प्रकार जो अनन्य बुद्धि से उस सर्वमय ब्रह्म का ध्यान करता है, वह निराकार एवं अमृततुल्य पद को प्राप्त होता है।

महामते ! अब मैं द्वितीय अर्थात् सगुण ध्यान का वर्णन करता हूँ। इस ध्यान का विषय भगवान का मूर्त अथवा साकार रूप है । वह निरामय-रोग-व्याधि से रहित है, उसका दूसरा कोई आलम्ब-आधार नहीं है (वह स्वयं ही सबका आधार है।) । राजन् ! जिनके संकल्प में इस जगत का वास है, वे भगवान श्रीहरि इस विश्व को वासित करने के कारण ही वासुदेव कहलाते हैं । उनका श्रीविग्रह वर्षा ऋतु के सजल मेघ के समान श्याम है, उनकी प्रभा सूर्य के तेज को भी लज्जित करती है। उनके दाहिने हाथों में बहुमूल्य मणियों से चित्रित शंख और बड़े-बड़े असुरों का संहार करनेवाली कौमोदकी गदा विराजमान है । उन जगदीश्वर के बायें हाथों में पद्म और चक्र सुशोभित हो रहे हैं । इस प्रकार उनकी चार भुजाएँ हैं । वे सम्पूर्ण देवताओं के स्वामी हैं। वे लक्ष्मीपति हैं । शंख के समान मनोहर ग्रीवा, सुंदर गोलाकार मुखमंडल तथा पद्मपत्र के समान बड़ी-बड़ी आँखें, कुंद जैसे चमकते हुए दाँतों से भगवान हृषीकेश की बड़ी शोभा हो रही है। राजन् ! श्रीहरि निद्रा के ऊपर शासन करनेवाले हैं, उनका नीचे का होंठ मूँगे की तरह लाल है । नाभि से कमल प्रकट होने के कारण उन्हें पद्मनाभ कहते हैं । वे अत्यंत तेजस्वी किरीट के कारण बड़ी शोभा पा रहे हैं । श्रीवत्स के चिह्न ने उनकी छवि को और बढ़ा दिया है। श्री केशव का वक्षःस्थल कौस्तुभ मणि से अलंकृत है तथा सूर्य के समान तेजस्वी कुण्डल, केयूर, हार, कड़े, कटिसूत्र, करधनी तथा अँगूठियों आदि से उनके श्रीअंग विभूषित हैं, जिनसे उनकी शोभा बहुत बढ़ गयी है । भगवान तपाये हुए सुवर्ण के रंग का पीताम्बर पहने हुए हैं और गरुड़ की पीठ पर विराजमान हैं । वे भक्तों की पापराशि को दूर करनेवाले हैं । इस प्रकार श्रीहरि के सगुण स्वरूप का ध्यान करना चाहिए।

राजन् ! इस प्रकार मैंने तुम्हें दो प्रकार के ध्यान बतलाये हैं । इनका अभ्यास करके मनुष्य मन, वाणी तथा शरीर द्वारा होनेवाले सभी पापों से मुक्त हो जाता है । वह जिस-जिस फल को प्राप्त करना चाहता है, वह सब उसे निश्चित रूप से मिल जाता है, देवता भी उसका आदर करते हैं तथा अंत में वह विष्णुलोक को प्राप्त होता है। ■

(पृष्ठ ०६ का शेष)

मिलाओ। हाथ मिलाते समय तुम्हारे हाथ पर भगवान के हाथ से थोड़ा दबाव आ गया और तुमने 'अहहा... अहहह... ओह... अरर... ओय होय... मेरे प्यारे ! अररऽऽऽ...' किया- इसका भी मजा तुम्हें दिन भर उस प्यारे की स्मृति करायेगा। मन नहीं लगता तो कमरा बंद करके ५-१० मिनट **'हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे...'** कीर्तन के साथ नृत्य करो।

इस प्रकार भगवद्ध्यान-कीर्तन करना यह छलाँग मारना हुआ। ईश्वर में विश्रांति पाने से 'अनागत विधातामति' को प्राप्त हो जाओगे और शीघ्र ही दुःख, ताप व बंधनों से मुक्त हो जाओगे। ■

मधु संचय

मौनं सर्वार्थसाधनम्

मौन के द्वारा वाणी का संयम होता है। संयम के द्वारा शक्ति बढ़ती है। जो साधक दीर्घकाल तक मौन का पालन कर सकता है, उसमें एक तरह की वाचासिद्धि आती है। मन अन्तर्मुख होकर चिन्तन-परायण बनता है। मौन के साथ जब जपयज्ञ चलाया जाता है, तब धीरे-धीरे मन एकाग्र होने लगता है। चिन्तन के साथ ध्यान आ जाता है और तरह-तरह की मानसिक शक्तियाँ जागृत होती हैं, प्रकट होती हैं।

प्रत्येक प्राणी की पहचान वाणी है तो उसकी आत्मा की भाषा मौन है। मानव-जीवन दो विराट मौन बिंदुओं के बीच की मर्यादित स्वर-लहरी है। पंचभौतिक जगत में प्रवेश करते समय जीवात्मा का चिरंतन मौन भंग हो जाता है और संसार से विदा होते समय वह इसी शाश्वत मौन-वाहिनी में विलीन हो जाता है। जो काम वाणी नहीं कर पाती, वह मौन द्वारा सुलभ साध्य बन जाता है। वाणी की सीमा रहती है पर मौन की कोई सीमा नहीं है। मौन शांति का प्रतीक है और सांसारिक शांति का साधक भी है।

जहाँ तक सामान्य लौकिक जीवन में मौन के महत्त्व का प्रश्न है, यह माना गया है कि आवश्यकताभर भाषण करना और आवश्यकता से अधिक एक शब्द भी न बोलना व्यावहारिक मौन है। जो व्यक्ति अधिक बोलता है, वह व्यर्थ बोलने का अपराधी सिद्ध होता है।

भारतीय जीवन में मौन की बड़ी महिमा मानी गयी है। कहा गया है कि मौन के द्वारा सब कुछ साधा जा सकता है। दुर्भाग्य से हम मौन के महत्त्व को या तो जानते नहीं हैं या जानकर भी उस पर आचरण नहीं करते। हममें से अधिकांश व्यक्तियों की वाणी का स्रोत खुल जाता है तो वह रुकने का नाम नहीं लेता। हमारी बहुत-सी शक्ति का अनजाने में अपव्यय हो जाता है। शक्ति के इस अपव्यय को रोकने के लिए हमारे महापुरुषों ने कहा है कि अनिवार्य हो तभी बोलो और जहाँ एक शब्द से काम चल जाता हो, वहाँ दो शब्दों का प्रयोग मत करो। महात्मा गाँधी सप्ताह में एक दिन मौन रखते थे। वह उनका 'मौन दिवस' कहलाता था और उस दिन वह इतना काम करते थे कि देखकर लोग चकित रह जाते थे।

मौन हमें शक्ति प्रदान करता है। वह हमें संयम का पाठ पढ़ाता है। संयम शरीर का ही नहीं होता, वाणी का भी होता है। जिस प्रकार शारीरिक संयम से व्यक्ति को स्वास्थ्य और दीर्घ जीवन प्राप्त होता है, उसी प्रकार वाणी के संयम से व्यक्ति जीवन की बहुत-सी उलझनों और झंझटों से बच जाता है। आपस में जितनी लड़ाइयाँ होती हैं, उनमें से ज्यादातर का कारण कठोर शब्द होते हैं।

मौन मनुष्य की शक्ति-संचय का महत्त्वपूर्ण महाव्रत है। मौन रखने पर जब, जो कुछ बोला जाता है, उसमें अपेक्षाकृत अधिक सत्य होता है। वाचाल सदा मृषावादी होता है। गाँधीजी प्रायः कहा करते थे : 'जहाँ बोलने के बारे में शंका हो वहाँ मौन रहें।'

अधिक और अनर्थ बोलने से संघर्ष की संभावना बढ़ जाती है, ऐसी दशा में लोक में एक प्रचलित कहावत है : **'एक चुप सौ को हराया।'**

मौन की महिमा अनंत है। मुनि का लक्षण ही मौन है, जिसके जीवन का लक्ष्य आत्म और अध्यात्म विकास करने में निहित है। परमात्मा बुद्धि और वाणी से परे है। विचार कीजिये जो कुछ मेरे द्वारा बाह्य जगत में देखा जा रहा है, वह तो जड़ है, कुछ जानता ही नहीं। मैं स्वयं ज्ञापक हूँ जिसे किसीके द्वारा देखा नहीं जा सकता, तब ऐसी स्थिति में भला किसके साथ बोला जाय ? इस रहस्य को जानने के लिए मौनव्रत रखने के अतिरिक्त अन्य अनन्य उपाय नहीं है। मौन मन और मान को निस्तेज करता है।

मौन ध्यान की भूमिका अथवा उसका प्रथम चरण है। 'मौन' का अर्थ केवलमात्र वाणी का मौन होना नहीं है। वाणी का मौन तो मात्र प्रारंभ है। 'मौन' का अर्थ है बाह्य संचरण छोड़कर अन्तःसंचरण करना। 'मौन' का अर्थ है संयम के द्वारा धीरे-धीरे इंद्रियों तथा मन के व्यापार का शमन होना। **मौनं सर्वार्थसाधनम्।** मौन समस्त सिद्धियों के मूल में है। ■

संस्कार सिंचन

शिक्षा और संस्कार

वर्षों तक मेहनत और दिन-रात पढ़ाई करके भी विद्यार्थी आधिभौतिक ज्ञान का अल्पांश ही जान पाता है। आधिदैविक ज्ञान व सारे ज्ञानों का मूल-आध्यात्मिक ज्ञान तो उसकी पहुँच के बाहर ही होता है। अपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अतृप्तता में ही जीवन का अंत होना यह संस्कारविहीन अपूर्ण शिक्षा की देन है।

बच्चों के सर्वांगीण विकास के लिए शिक्षा की जितनी आवश्यकता है उससे कहीं अधिक आवश्यकता है, उन्हें सुसंस्कारित करने की। संस्कारहीन शिक्षा जीवन को सही दिशा नहीं दे सकती। शिक्षा से बुद्धि का और सुसंस्कारों से हृदय में सद्भावनाओं का विकास होता है। स्वामी रामतीर्थजी कहते थे :

'बाल्यावस्था में जबकि हृदय का क्षेत्र प्रभाव को शीघ्र ग्रहण करनेवाला होता है, प्रायः भ्रांतियाँ (भूलें) जो विद्यार्थियों को पुष्टिकर औषधि समझकर पिलायी जाती हैं, उनके रक्त में दोष उत्पन्न कर देती हैं और उनके जीवन को कड़वा बनाये रखती हैं।'

आज विद्यार्थियों को परमाणु-विखंडन द्वारा विध्वंस का पाठ तो पढ़ाया जाता है पर हृदय में विश्वप्रेम का विकास कैसे हो ? मानवीय संवेदना किसे कहते हैं ?- इसका एक अंश भी नहीं बताया जाता। अर्थशास्त्र तो उनके दिमाग में भर दिया जाता है पर परमार्थशास्त्र से उन्हें अनभिज्ञ रखा जाता है। सुसंस्कारों के न मिलने से जीवन बिन नाविक की नाव जैसा हो जाता है।

संस्कारहीन शिक्षा से होनेवाली दुर्दशा का वर्णन डॉ. हाइमगिनोट नामक एक शिक्षक ने अपने पत्र में किया है। ये शिक्षक हिटलर द्वारा यहूदियों को मरवाने के लिए बनाये गये गैस-चैम्बर में से किसी प्रकार भागने में सफल हो गये थे। वे लिखते हैं :

'प्यारे शिक्षक !

दम घोंट देनेवाली छावनी से मैं बाल-बाल बचा। कोई भी व्यक्ति कभी भी देखने की इच्छा न करे, ऐसे दृश्य मेरी आँखों ने देखे हैं। सुशिक्षित इंजीनियरों द्वारा बनायी गयीं गैस चैम्बरें, शिक्षित डॉक्टरों द्वारा जहर पिलाये हुए बालक, तालीमप्राप्त परिचारिकाओं द्वारा मार डाले गये शिशु, हाईस्कूल और कॉलेज के शिक्षकों द्वारा जिंदा जला दिये गये बच्चे और स्त्रियाँ - यह सब मैंने इन्हीं आँखों से देखा है, इसलिए शिक्षा के विषय में मैं जरा

शंकाशील हूँ।

मेरी इतनी ही प्रार्थना है कि आप अपने बालकों को सच्चा आदमी बनाना। देखना कहीं तुम्हारे प्रयत्नों के कारण वे शिक्षित राक्षस, चालाक मनोरोगी या हत्यारे न बनें। लेखन-वाचन उपयोगी तभी हैं जब वे बालकों को सच्चा इन्सान बनायें।'

इसीलिए हमारी वैदिक संस्कृति के ऋषि-मुनियों ने साक्षर बनानेवाली शिक्षा के साथ आध्यात्मिक दीक्षा पर विशेष बल दिया था, ताकि 'साक्षरा मति' अपने ज्ञान का दुरुपयोग करके 'राक्षसा मति' न बने बल्कि महेश्वर तत्त्व को जानकर सर्वहितकारिणी 'ऋतम्भरा प्रज्ञा' या 'तत्त्वबुद्धि' हो जाय।

सुसंस्कारविहीन शिक्षा मानवीय संवेदनारहित हृदय का निर्माण करती है। जिन्हें बाल्यावस्था में सुसंस्कार नहीं मिलते अधिकांशतः ऐसे बालक ही आगे चलकर अपराध के क्षेत्र में कदम रखते हैं। अतः लौकिक ज्ञानार्जन के साथ सुसंस्कारों का अर्जन भी नितान्त आवश्यक है, नहीं तो वह ज्ञान विनाश की ओर ले जाता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गाँधीजी से किसीने पूछा : ''इस समय आपकी दृष्टि में भारत के समक्ष सबसे बड़ी समस्या कौन-सी है ?''

गाँधीजी ने कहा : ''मेरे अनुसार इस समय सबसे बड़ी समस्या शिक्षित मनुष्यों की संवेदन-शून्यता है। मनुष्य शिक्षित हो और संवेदनाविहीन हो तो वह ज्यादा खतरनाक साबित हो सकता है।''

प्राचीनकाल में गुरुकुलों में छात्रों को लौकिक ज्ञान देने के साथ सुसंस्कारित भी किया जाता था। अतः वहाँ सुसंस्कृत नागरिकों का निर्माण होता था, जो कि समाज के लिए घातक नहीं, उपयोगी, उद्योगी और सहयोगी सिद्ध होते थे।

आज विद्यार्थियों को अपूर्ण ज्ञान दिया जाता है। ज्ञान के तीन क्षेत्र हैं : आधिभौतिक, आधिदैविक व आध्यात्मिक। वर्षों तक मेहनत और दिन-रात पढ़ाई करके भी विद्यार्थी आधिभौतिक ज्ञान का अल्पांश ही जान पाता है।

आधिदैविक ज्ञान व सारे ज्ञानों का मूल- आध्यात्मिक ज्ञान तो उसकी पहुँच के बाहर ही होता है। अपूर्ण ज्ञान प्राप्त कर अतृप्तता में ही जीवन का अंत होना यह संस्कारविहीन अपूर्ण शिक्षा की देन है। शिक्षा पूर्ण तभी कही जायेगी जब वह आध्यात्मिक संस्कारों के साथ प्रदान की जाय।

सावधान ! अपने-अपने इलाके में शिक्षा में आधिदैविक और आध्यात्मिकता का संचार हो ऐसा प्रयत्न करें। तभी हमारे बालक स्वस्थ, सुखी, सम्मानित तथा आत्मसंतुष्ट उच्च मानव, महामानव बन पायेंगे और विश्व का मार्गदर्शन कर पायेंगे। ■

''जिस विद्यार्थी के जीवन में ऐहिक (स्कूली) विद्या के साथ उपासना भी है, वह सुंदर सूझबूझवाला, सबसे प्रेमपूर्ण व्यवहार करनेवाला, तेजस्वी-ओजस्वी, साहसी और यशस्वी बन जाता है।'' – पूज्य बापूजी

संस्कार सिंचन

गुरुकुलों व बाल संस्कार केन्द्रों ने मनाया 'मातृ-पितृ पूजन दिवस'

१४ फरवरी को जहाँ पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित युवान-युवतियाँ 'वेलेन्टाइन डे' के नाम पर नैतिकता का गला घोंटते हैं, वहीं पूज्य बापूजी की प्रेरणा से संत श्री आसारामजी गुरुकुलों एवं बाल संस्कार केन्द्रों द्वारा 'मातृ-पितृ पूजन दिवस' की ऐतिहासिक शुरुआत की गयी। इस दिन एक भव्य महोत्सव मनाया गया, जिसमें बालकों ने अपने माता-पिता का पूजन किया, आशीर्वाद प्राप्त किये। जीवन में संयमी, सदाचारी बनने तथा किसी भी प्रकार की बुराई से अप्रभावित रहने का सत्संकल्प लिया। इस अवसर पर बच्चों द्वारा नाटकों का मंचन, समूहगान, योगासन आदि विभिन्न कार्यक्रमों का आयोजन भी किया गया।

पर्व मांगल्य

(१९ अप्रैल २००७)

अक्षय फलदायिनी : अक्षय तृतीया

अक्षय तृतीया का पर्व वसंत और ग्रीष्म के सन्धिकाल का महोत्सव है। वैशाख शुक्ल तृतीया को मनाये जानेवाले इस अक्षय तृतीया को दिये गये दान, किये गये स्नान, जप, तप व हवन आदि कर्मों का शुभ और अनंत फल मिलता है :

स्नात्वा हुत्वा च दत्त्वा च जप्त्वानन्तफलं लभेत्।

'भविष्य पुराण' के अनुसार इस तिथि को किये गये सभी कर्मों का फल अक्षय हो जाता है, इसलिए इसका नाम 'अक्षय' पड़ा है। 'मत्स्य पुराण' के अनुसार इस तिथि का उपवास भी अक्षय फल देता है।

इस तिथि की युगादि तिथियों में गणना होती है क्योंकि कृतयुग (सत्ययुग) का व कल्पभेद से त्रेतायुग का प्रारम्भ इसी तिथि से हुआ है। इसलिए यह समस्त पापनाशक तथा सर्वसौभाग्य प्रदायक है।

इसमें पानी के घड़े, पंखे, ओले (खाँड़ के लड्डू), खड़ाऊँ, पादत्राण (जूता), छाता, गौ, भूमि, स्वर्णपात्र, वस्त्र आदि का दान पुण्यकारी तथा गंगा-स्नान अति पुण्यकारी माना गया है। इस दिन कृषिकार्य का प्रारम्भ शुभ और समृद्धि प्रदायक है - ऐसा विश्वास किया जाता है।

इसी तिथि को ऋषि नर-नारायण, भगवान परशुराम और भगवान हयग्रीव का अवतार हुआ था, इसीलिए इनकी जयंतियाँ भी अक्षय तृतीया को मनायी जाती हैं। यह अत्यंत पवित्र और सुख-सौभाग्य प्रदान करनेवाली तिथि है। इस तिथि को सुख-समृद्धि और सफलता की कामना से व्रतोत्सव मनाने के साथ ही अस्त्र-शस्त्र, वस्त्र-आभूषण आदि बनवाये, खरीदे और धारण किये जाते हैं। नयी भूमि खरीदना, भवन, संस्था आदि में प्रवेश इस तिथि को शुभ व फलदायी माना जाता है।

इस दिन तीर्थ में स्नान और भगवान मधुसूदन का पूजन करना चाहिए। स्नान के पश्चात् प्रार्थना करें :

माधवे मेषगे भानौ मुरारे मधुसूदन॥

प्रातः स्नानेन मे नाथ फलदः पापहा भव॥

'हे मुरारे ! हे मधुसूदन ! वैशाख मास में मेष के सूर्य में हे नाथ ! इस प्रातःस्नान से मुझे फल देनेवाले हो जाओ और पापों का नाश करो।'

व्रत-विधान : 'विष्णु धर्मोत्तर' में बताया गया है कि स्नानादि से निवृत होकर **'मम अखिलपापक्षयपूर्वकं सकलशुभफलप्राप्तये भगवत्प्रीतिकामनया देवत्रयं पूजनमहं करिष्ये।'** ऐसा संकल्प करके भगवान का षोडशोपचार से पूजन करें।

यः पश्यति तृतीयायां कृष्णं चंदन भूषितम्।

वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमंदिरम्॥

'जो वैशाख मास के शुक्लपक्ष की तृतीया को चंदन विभूषित भगवान श्रीकृष्ण का दर्शन करता है, वह अच्युत के धाम को जाता है।'

इस व्रत में भगवान को पंचामृत से स्नान कराके पुष्पमाला, धूप, दीप, नैवेद्य चढ़ाते हैं। भगवान नर-नारायण को भूने हुए गेहूँ का व जौ का सत्तू, भगवान परशुरामजी को ककड़ी और भगवान हयग्रीव को चने की भीगी हुई दाल का भोग लगाया जाता है। ■

प्रेम और राग में क्या फर्क ?

प्रेम असीम होता है। व्यक्ति, वस्तु, देश, समाज या अन्य किसी भी प्रकार के संकुचित दायरे में उसे नहीं बाँधा जा सकता। समग्र जीवसृष्टि उसके वर्तुल में समाविष्ट है, एक भी बाहर नहीं। इस प्रेम में वासना, अपेक्षा और द्वेष की गंध भी नहीं होती, जबकि राग अमुक वस्तु या व्यक्ति के प्रति ही होता है, अतः सीमित होता है। जहाँ राग हो वहाँ वासना की कलुषता और द्वेष की विभत्सता आयेगी ही। वस्तु और व्यक्ति के प्रति संबंध के मुताबिक राग व प्रेम अलग-अलग रूप धारण करते हैं। अतः राग दुःख-द्वेष का और प्रेम निःसीम करुणा और आनंद का खजाना माना जायेगा।

दिव्य 'चिंतामणि मंत्र'

संस्कृत साहित्य के पंचमहाकाव्यों में से एक 'नैषध' के रचयिता महाकवि 'श्रीहर्ष' थे।

श्रीहर्ष के पिता श्रीहीर कन्नौज नरेश महाराज विजयचंद्र तथा उनके उत्तराधिकारी जयचंद्र के राजपंडित थे। विद्वत्ता के कारण राजदरबार में उनका बड़ा सम्मान था परंतु उनके पुत्र श्रीहर्ष मंदबुद्धि थे, इससे श्रीहीर बड़े चिंतित रहते थे। वे श्रीहर्ष को एक सिद्ध महात्मा चिंतामणि स्वामी के पास ले गये। बालक श्रीहर्ष ने बड़ी निष्ठा से उनकी सेवा की। उसकी सेवा से संतुष्ट होकर दयालु संत ने अपने पावन करकमलों से श्रीहर्ष की जिह्वा पर 'चिंतामणि मंत्र' लिख दिया। फलस्वरूप बालक की मेधाशक्ति जागृत हो गयी और प्रगाढ़ स्मरण-क्षमता भी प्राप्त हुई।

एक बार भरी सभा में किसी विद्वान ने राजपंडित श्रीहीर को शास्त्रार्थ में पराजित कर दिया। पराजय से लज्जित हो उन्होंने शरीर त्याग दिया। मरते समय उन्होंने श्रीहर्ष से कहा : ''पुत्र ! यदि तुम सुपुत्र हो तो छल से मुझे पराजित करनेवाले पंडित का मान-मर्दन कर मेरी संतप्त आत्मा को शांति पहुँचाना।''

बालक श्रीहर्ष ने पिता के इस आदेश को कार्यान्वित करने की प्रतिज्ञा की। अपने गुरु चिंतामणि स्वामी की प्रेरणा से श्रीहर्ष ने एक वर्ष तक 'चिंतामणि मंत्र' का अनुष्ठान कर मंत्र सिद्ध किया और ऐसी विद्वत्ता प्राप्त की कि उनके कथन को कोई भी विद्वान समझ ही नहीं पा रहा था। तब श्रीहर्ष ने सरस्वती देवी को उपासना द्वारा पुनः प्रकट कर कहा : ''माता ! आपके द्वारा प्रदत्त वर के फलस्वरूप प्राप्त मेरा पांडित्य भी सदोष ही रहा क्योंकि मेरे कथन को कोई भी विद्वान समझ ही नहीं पाता।''

देवी ने कहा : ''वत्स ! आधी रात को सिर पर गीला कपड़ा लपेटकर तक्र (मट्ठा) का पान करो, जिससे कफ-बाहुल्य होकर बुद्धि में जड़ता आ जायेगी, तब तुम्हारे कथन को विद्वान लोग समझने लगेंगे।''

श्रीहर्ष ने ऐसा ही किया। तब उनके कथन को विद्वान लोग समझने लगे। तत्पश्चात् उन्होंने अपने पिता को पराजित करनेवाले पंडित को पराजित कर पिता की इच्छा पूरी की और 'खण्डनखण्डखाद्य' आदि अनेक कालजयी ग्रंथों की रचना की।

देवी सरस्वती ने राजा नल को भी यह मंत्र वरदान के रूप में प्रदान किया था।

श्रीहर्ष ने जिस 'चिंतामणि मंत्र' व यंत्र की उपासना की थी, वह निम्न प्रकार से था :

मंत्र : **'ॐ ह्रीं ॐ'**

इसमें **'ह्रीं'** चिंतामणि बीज है। बीजमंत्र में मंत्र का रहस्य एवं गुप्त शक्ति निहित होती है। इसमें ध्वनि की विशेषता होती है। ■

यंत्र :
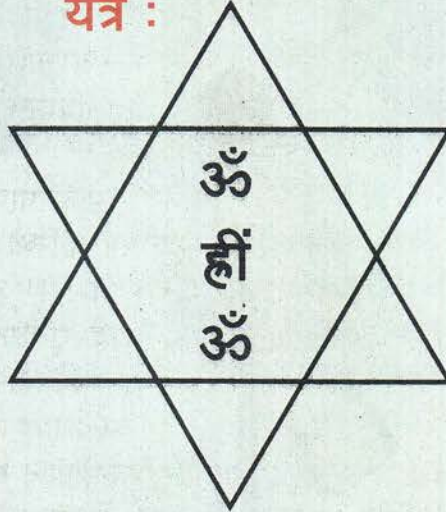
जिह्वा पर यंत्र लिखने की विधि :

शिशु-जन्म के आधे घंटे बाद व जातकर्म से पूर्व उसकी जिह्वा पर सोने की सलाई से गाय के शुद्ध घी तथा शहद के विमिश्रण (घी व शहद की मात्रा विषम अनुपात में हो) से उपरोक्त यंत्र लिखें व उसके कान में मधुर वाणी में 'चिंतामणि मंत्र' का उच्चारण करें।

आध्यात्मिक शंका-समाधान

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

तीन गुणों से उत्थान-पतन का संबंध

अज्ञान से अहंकार बढ़ता है। जितना अहंकार अधिक होता है उतना ही व्यक्ति संसार में अधिक आसक्त होता है । जितना सांसारिक बोझ अधिक होगा उतना ही व्यक्ति नीचे जायेगा । गुण तीन हैं । इनमें तमोगुण सबसे भारी (जड़तापूर्ण) है, इसीसे तमोगुणी व्यक्ति नीचे जाता है, नीच योनियों एवं नरकों को प्राप्त होता है । रजोगुण कुछ हलका है, रजोगुणी व्यक्ति बीच के इस मनुष्यलोक में ही रहता है । सत्त्वगुण सबसे हलका (जड़ताहीन) है, इससे सत्त्वगुणी व्यक्ति परमात्मा की ओर, ऊपर को उठता है तथा उच्च लोकों को जाता है।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था
मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
...अधो गच्छन्ति तामसाः ॥

(गीता : १४.१८)

हलकी चीज ऊपर तैरती है, भारी डूब जाती है। आसुरी सम्पदा तमोगुण का रूप है इसलिए वह नीचे ले जाती है, दैवी सम्पदा सत्त्वगुण का रूप है इसलिए वह ऊपर को उठाती है। दैवी सम्पदा ही ईश्वरीय सम्पत्ति है । यह सम्पत्ति ज्यों-ज्यों बढ़ती है त्यों-त्यों साधक ऊपर उठता है, यानी परमात्मा के समीप पहुँचता है।

परमात्मा सर्व-अन्तर्यामी कैसे ?

स्थूल और सूक्ष्म में उस एक ही परमात्मा को व्यापक समझना चाहिए । परमात्मा व्यापक रूप से सबको देखता और जानता है। वह ज्ञेय परब्रह्म कैसा है ?

सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥

'वह सब ओर हाथ-पैरवाला, सब ओर नेत्र, सिर और मुखवाला तथा सब ओर कानवाला है क्योंकि वह संसार में सबको व्याप्त करके स्थित है।'

(गीता : १३.१३)

ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ वह न हो, ऐसा कोई शब्द नहीं जिसे वह न सुनता हो, ऐसा कोई दृश्य नहीं जिसे वह न देखता हो, ऐसी कोई वस्तु नहीं जिसे वह ग्रहण न करता हो और ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ वह न हो।

हम प्रसाद का भोग लगाते हैं तो वह स्वीकार करता है । हम यहाँ स्तुति करते हैं तो वह सुनता है। हमारी प्रत्येक क्रिया को वह देखता है परंतु हम उसे नहीं देख सकते। इस पर प्रश्न होता है कि एक ही पुरुष की सब जगह सब इन्द्रियाँ कैसे रहती हैं ? आँख है, वह नाक कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में यही कहा जा सकता है कि परमात्मा सबसे विलक्षण है। वह अलौकिक शक्ति है, उसमें सब कुछ सम्भव है। मान लीजिये एक सोने का ढेला है। उसमें कड़े, बाजूबंद, कंठी आदि सभी गहने सभी जगह पर छुपे हैं, जहाँ इच्छा हो वहीं से सब मिल सकते हैं। इसी प्रकार परमात्मा एक

विघ्नों की सुपारी के साथ मिला दें ज्ञान का बादाम

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

सुपारी कड़ी होती है । बूढ़े आदमी उसे दाँत से तोड़ नहीं सकते । जवान भी तोड़ना चाहे तो जोर लगाना पड़ता है लेकिन वही सुपारी अगर बादाम के साथ चबाओ तो एकदम मुलायम हो जाती है। ऐसे ही जीवन में जो विघ्न-बाधाएँ आती हैं उन्हें आप ज्ञान के बादाम के साथ मिला दो तो वे एकदम मुलायम हो जायेंगी, दुःख दूर हो जायेंगे।

ऐसा कोई भी दुःख नहीं है, ऐसी कोई भी चिंता नहीं है, ऐसा कोई भी रोग नहीं है, ऐसी कोई भी मुसीबत नहीं है जिसका निराकरण न हो । असम्भव कुछ नहीं, सब सम्भव है । आदमी जब हताश हो जाता है, निराश हो जाता है, भीतर से हार जाता है तभी वह दुःखी होता है । वह उत्साह से काम करता रहे तो उसे आगे का रास्ता मिलता रहेगा । विघ्न और बाधाओं को चीरते-चीरते जो उन्नति होती है उसका अपना कुछ अलग ही रस होता है।

परमात्मा की शक्ति हर प्राणी के अंदर छुपी हुई है। पशु उसको उन्नत नहीं कर सकता, इसलिए पशु-जीवन व्यर्थ माना जाता है । मनुष्य उसको उन्नत कर सकता है, जगा सकता है। 'गीता' में श्रीकृष्ण ने कहा : 'तू युद्ध करते हुए सतत मेरा सुमिरन कर।' अब संसार में भी तो हम युद्ध कर रहे हैं । कभी काम आया, कभी लोभ आया, कभी मोह आया, कभी चिंता आयी, कभी बीमारी आयी... इस युद्ध में भी आप परमात्मा का सुमिरन करो ताकि आप इस युद्ध के विजेता हो जाओ।

संसार परमात्मप्राप्ति की एक पाठशाला है । यहाँ कहीं भी आप सुखद परिस्थिति में टिक गये तो विघ्न आ जायेगा । यश में टिक गये तो अपयश आ जायेगा । मान में टिक गये तो अपमान आ जायेगा । पति-पत्नी में मोह हो गया तो वहाँ भी किसी भी रूप में विघ्न आयेगा- कलह, रोग, वैमनस्य या किसी भी रूप में आये । आपके फँसने के स्थान में कुछ-न-कुछ विघ्न डालकर वह परमात्मा आपकी उन्नति करा रहा है । जब विघ्न-बाधा आये तो अपनेको दीन-हीन मानकर निराश नहीं होना चाहिए अपितु ऐसा समझना चाहिए कि वे अंतर्यामी परमात्मा हमारे हृदय में प्रकट होना चाहते हैं। हमारी छुपी हुई जीवन-शक्तियाँ प्रकट कर वे जीवनदाता हमें अपने ज्ञान स्वभाव में, साक्षी स्वभाव में, सच्चिदानंद स्वभाव में जगाना चाहते हैं । आश्रम से प्रकाशित 'नारायण स्तुति' पुस्तक पढ़ें और नारायण स्वभाव में जगें ।

(शेष पृष्ठ १७ पर)

ऐसी वस्तु है जिसमें सब जगह पर सभी वस्तुएँ व्याप रही हैं, सभी उसमें से निकल सकती हैं। इसलिए वह सब जगह की, सबकी बातों को एक साथ सुन सकता है और सबको एक साथ देख सकता है।

स्वप्न में आँख, कान, नाक वगैरह न होने पर भी अंतःकरण स्वयं सब क्रियाओं को आप ही करता है और आप ही देखता-सुनता है । वह द्रष्टा, दर्शन और दृश्य सभी कुछ बन जाता है। इसी प्रकार ईश्वरीय शक्ति भी बड़ी विलक्षण है । वह सब जगह सब कुछ करने में सर्वथा समर्थ है । यही तो उसका ईश्वरत्व और विराट स्वरूपत्व है।

परमात्मा की सच्ची सेवा क्या है ?

निराकार या साकार किसी भी रूप का ध्यान करने पर जो एक ही परम वस्तु उपलब्ध होती है, उस परमेश्वर की सब प्रकार से शरण होकर कानों से उसका प्रभाव सुनना, श्वासोंश्वास में उसका नामोच्चारण करना, इन्द्रियों और शरीर से उसकी सेवा करना, मन से उसे स्मरण करना और बुद्धि से उसकी प्राप्ति का दृढ़ निश्चय कर उसकी इच्छानुसार चलना - यही उसकी सेवा है । यही असली भक्ति है और इसीसे आत्मा का शीघ्र कल्याण हो सकता है । ■

नारी ! तू नारायणी

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

योगविद्या की धनी सुलभा

सुलभा एक परम विदुषी महिला थी । उसका जन्म प्रधान नामक राजर्षि के कुल में हुआ था । वह ब्रह्मचारिणी तपश्चर्या व योगाभ्यास में रत तथा मोक्षधर्म में दीक्षित थी। वह स्व-आचरित जीवनचर्या संबंधी अनुष्ठानों में अडिग तथा अपने व्रतों में अटल थी। औचित्य का विचार किये बिना वह कभी भी एक शब्द नहीं बोलती थी । जैसे राजा जनक सांख्ययोग में ऊँची कक्षा पर थे, ऐसे ही सुलभा क्रियायोग में अपने जगत की अद्वितीय महिला थी। वह योगबल में इतनी आगे बढ़ी कि उसने अपनी काया नन्ही कुमारी जैसी बना ली थी। एक बार वह राजा जनक के राजमहल के अंतःपुर में भिक्षा के लिए पहुँची। उस तपस्विनी कुमारी की बड़ी-बड़ी आँखें थीं, ललाट चमक रहा था और चेहरे पर योगकला का अपूर्व प्रभाव झलक रहा था। एकाग्रता में शक्ति होती है, अपना आकर्षण होता है, अपना प्रभाव होता है।

राजा जनक ने झरोखे से देखा कि कौन-कौन भिक्षा लेने आ रहे हैं । उनकी नजर सुलभा पर पड़ी। उन्होंने अनुचरों को कहा कि 'इनको बिठाकर भिक्षा कराओ और बड़े आदर से इनको अन्नदान करके परितृप्त करो । जब भोजन से तृप्त हों तो मुझे बताना।'

योगिनी सुलभा भोजन करके तृप्त हुई तो जनक ने उसे अपने पास बुलाया और आदर से बिठाया। सुलभा ने कहा : ''जनक ! मैंने कई संन्यासियों, कई पंडितों से तुम्हारी प्रशंसा सुनी थी कि तुम राजकाज में होते हुए भी प्रभु में हो, तुम कर्म करते हुए भी अकर्ता पद में आरूढ़ हो । तुम बोलते हुए भी नहीं बोलते । तुम खाते हुए भी नहीं खाते । 'खाने, बोलने एवं क्रियाएँ करनेवाला तो यह शरीर है । मैं आकाश को भी ढँके हुए असंग आत्मा हूँ।'- ऐसा तुमको सतत अनुभव होता है । इसलिए मैं तुम्हारे दर्शन को आयी हूँ ।''

राजा जनक कहते हैं : ''सुलभा ! तुझे देखकर मेरा चित्त भी आदर से भर गया है । बता तूने ऐसा कौन-सा अमृतपान किया है ?''

सुलभा कहती है कि ''मैंने प्राणायाम की विधि से प्राण-अपान की गति को सम करके योगकला की यात्रा की है।''

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि जो सांख्य से प्राप्त होता है वही क्रियायोग से प्राप्त होता है । दोनों का फल एक है।

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।
एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति॥

'ज्ञानयोगियों द्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता है, योगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फलरूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है।' **(गीता : ५.५)**

सुलभा ने कहा : ''पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ प्राणशक्ति से चलती हैं; उसमें मन का संयोग होता है । मैंने प्राणायाम आदि करके मन को अंतर्मुख किया और इन्द्रियों के खिंचाव-तनाव से अपनी बिखरती हुई चेतना को थाम लिया।''

शरीर के १५ अलग-अलग घटक हैं और नाभि केन्द्र पर ध्यान करने से वे दिखते हैं । जैसे तुम नीम के पत्ते देखते हो, ऐसे ही तुम अपने अंदर नस तथा नाड़ियाँ सुस्पष्ट रूप से देख सकते हो और पता चलता है कि यह सब जो दिखता है वह देखनेवाले से पृथक् है ।

यह सिद्धान्त है कि जो दिखता है वह देखनेवाले से पृथक् है। आँख को ध्वनिविस्तारक दिखता है क्योंकि आँख उससे पृथक् है। ऐसे ही आँख में कोई कचरा आ गया अथवा आँख ठीक है कि नहीं यह मन देखता है क्योंकि मन आँख से पृथक् है। मन चंचल है कि चंचलता कम है यह निर्णय बुद्धि से होता है क्योंकि मन से बुद्धि पृथक् है और बुद्धि हमारी ठीक है कि बेठीक है उसको भी

जो देख रहा है वह मैं हूँ। मेरी बुद्धि आजकल विस्मृति में घिर गयी, मेरी बुद्धि में यह बात आ गयी- इसका भी तुम्हें पता चलता है क्योंकि तुम बुद्धि नहीं हो। बुद्धि की योग्यता बढ़ी या घटी इसको भी तुम देखते हो। मन की चंचलता बढ़ी या घटी इसको भी तुम देखते हो। आँखों ने ठीक देखा या नहीं इसको भी तुम देखते हो। क्योंकि तुम इन सबसे पृथक् असंग चैतन्य हो।''

अपने शांत और शुद्ध स्वरूप के बारे में योग के द्वारा उसे क्या-क्या उपलब्ध हुआ है, कैसे-कैसे योगयात्रा सुलभ हो सकती है यह सब सुलभा ने जनक के आगे बयान किया।

फिर उसने 'परकाया प्रवेश की विधि' बतायी कि योगी चाहे तो इस प्रकार परकाया में प्रवेश कर सकता है : चित (सीधा) सो जाय और अपना अंतवाहक शरीर स्थूल शरीर से बाहर निकाले। फिर वह उस अंतवाहक शरीर से श्वास के द्वारा दूसरे के शरीर में भी प्रवेश कर सकता है। यह परकाया प्रवेश की विद्या आद्य शंकराचार्य आदि के पास भी थी।

सुलभा ने कहा : ''जनक ! इस कला और विद्या को जाननेवाला जो चैतन्य है वह तुम हो तथा वही चैतन्य सबमें है। सबमें एक, एक में सब।''

राजा जनक सुलभा से बड़े प्रभावित हुए। उन्होंने उनका आदर किया। ■

हम नश्वर वस्तुओं की इच्छा-वासना बढ़ानेवाला संग करके नश्वर वस्तुओं की ही सत्यबुद्धि से इच्छा और प्रयत्न करते हैं तो हम नश्वर वस्तु और नश्वर शरीर प्राप्त करते जाते हैं... यदि हम शाश्वत् का ज्ञान सुनें, शाश्वत् की इच्छा पैदा हो और मनन करके शाश्वत् की गहराई में तनिक-सी खोज करें तो शाश्वत् आत्मा-परमात्मा का साक्षात्कार भी हो सकता है। सत्संग में जिनकी रुचि है और जिन्हें श्रवणार्थ आत्मज्ञान और आत्मविज्ञान मिलता है वे लोग सचमुच में भाग्यशाली हैं। ('सत्संग सुमन' पुस्तक से)

बाबा मलूकदासजी की वाणी

सच्ची फकीरी

भेख फकीरी जे करै, मन नहि आवै हाथि।
दिल फकीरी जे हो रहै, साहेब तिनके साथ ॥१॥
राम राम के नाम को, जहां नहीं लवलेस।
पानी तहाँ न पीजिए, परिहरिये सो देस ॥२॥

बाहर से फकीर का वेश धारण करनेमात्र से फकीर नहीं बना जाता क्योंकि फकीरी अर्थात् मन को जीतना। जब मनुष्य अपना मन बदल डाले, अहंभाव - परमात्मा से भिन्नता का भाव बिल्कुल ही दूर कर डाले तब समझें कि साहेब परमात्मा उसके साथी बने हैं, उसे परमात्मा मिले हैं।

मलूकदासजी कहते हैं कि जहाँ भगवान राम के नाम का गुणगान नहीं होता, जहाँ भगवान को याद ही नहीं किया जाता है, उस स्थान पर क्षण भर भी मत ठहरें। उस देश को छोड़ ही दें, वहाँ पानी भी न पीयें।■

(पृष्ठ १५ का शेष)

संसार सपना, ज्ञानस्वरूप नित्य रहनेवाला परमेश्वर अपना। जब शरीर सदा नहीं तो शरीर के संबंधी और उनसे संबंधित वस्तुएँ अपनी कैसे ? सदा तो आपका स्वरूप है।

सदा दिवाली संत की आठों पहर आनंद।
अकलमता कोई उपजा गिने इन्द्र को रंक ॥

ऐसी समझ के धनी बनने की पाठशाला है संसार। हे मुक्तात्मा ! हे चेतन आत्मा !! जड़ शरीर और वस्तुओं को मैं-मेरा मानना छोड़, चैतन्य-अपने आत्मदेव से नाता जोड़। नाता जोड़ना क्या है, जुड़ा-जुड़ाया है। केवल स्मृति कर, समझ ले। एक झटके में सारे दुःख, शोक, भय, चिन्ताएँ मिटाने का सामर्थ्य है आपमें भैया ! ॐ ॐ... नारायण-नारायण... आज तक इतनी परिस्थितियाँ आयीं और गयीं तो अभीवाली कब तक रहेगी। आप जिसको कभी छोड़ नहीं सकते उस आत्म-परमात्म स्वभाव में ज्ञान-ध्यान के द्वारा पहुँचो प्यारे ! ॐ ॐ... ■

परमहंसों का प्रसाद

सत् में प्रीति और असत् का उपयोग

- पूज्य बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं : **नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः ।**

'असत् वस्तु की तो सत्ता नहीं है और सत् का अभाव नहीं है ।' (गीता : २.१६)

सद्भावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।

'**सत्** इस प्रकार यह परमात्मा का नाम सत्यभाव में और श्रेष्ठभाव में प्रयोग किया जाता है।' (गीता : १७.२६)

एक परमात्मा सत्य है इसे देर-सवेर सभीको मानना पड़ता है । इसे माने बिना कितना भी धन मिल जाय, कितनी भी सत्ता मिल जाय, कितनी भी वाहवाही मिल जाय दुःख नहीं मिटेगा और सुख नहीं टिकेगा। इस सिद्धांत को आपने मान लिया, समझ लिया तो आपका सुख नहीं मिटेगा तथा दुःख नहीं टिकेगा, बिल्कुल पक्की बात है।

शरीर और मिली हुई योग्यताएँ नश्वर हैं। मिली हुई चीजें सदा टिकनेवाली नहीं हैं, इसलिए उनमें आसक्ति छोड़ो, उनका सदुपयोग करो। जीवात्मा शाश्वत है, उसे जानो - यह सिद्धांत है।

जब आप बच्चे थे तो इतने अयोग्य थे, इतने पराधीन थे कि अपने मुँह पर बैठी मक्खी नहीं उड़ा सकते थे; भूख-प्यास और अपने पेट की पीड़ा नहीं बता सकते थे । फिर भी आपका पालन-पोषण करके समाज ने, प्रारब्ध ने, ईश्वरीय विधान ने आपको स्वाधीन बना दिया । आपको बल दे दिया, आपको योग्यता दे दी। सब लोग अपना बल और योग्यता अपने लिए सँभाल के रखते तो आपकी निर्बलता तथा अयोग्यता नहीं मिटती, आप अभी बल और योग्यतावाले नहीं हो सकते थे।

जब दूसरों का बल और योग्यताएँ आपको बलवान और योग्य बनाने के काम आये तो आपका बल और योग्यता भी आपके लिए नहीं है, दूसरों के लिए है । ये दूसरे को, निर्बल को नीचा दिखाने के लिए, दुःखी करने के लिए नहीं हैं। क्या आप चाहते हैं कि आपको कोई नीचा दिखाये या दुःखी करे ? आप नहीं चाहते तो आप अपने बल और योग्यता से किसीको नीचा दिखाने का असाधन मत पकड़ो । यह आपके लिए, मेरे लिए - हम सभीके लिए है।

आपका जो धन-बल है, बुद्धि-बल है, ज्ञान-बल है अथवा पदार्थ-बल है, वह पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा और अभी नहीं की तरफ जा रहा है तो आप उसका सदुपयोग कर लो । बल रहेगा नहीं, योग्यता रहेगी नहीं, पदार्थ रहेगा नहीं । आज आपकी जो इतनी समझ है वह रहेगी नहीं, बदल जायेगी। जो नहीं रहनेवाला है, जो चल है उसे नहीं रहनेवाले, चल संसार की सेवा में लगा दो तो आप अचल सुख में टिक जाओगे।

आप यह व्रत ले लो कि किसीका बुरा नहीं सोचेंगे, किसीका बुरा नहीं करेंगे, किसीको बुरा नहीं मानेंगे तो आप हो गये भले आदमी । जब आप भले आदमी हो गये तो योग्यताओं एवं बल का दुरुपयोग बंद हो गया और 'ये योग्यताएँ अपने लिए नहीं हैं।' - यह पक्का हो गया, फिर उनका सदुपयोग होगा । अब सदुपयोग होगा तो आपको मिलेगी वाहवाही । आप वाहवाही का अहंकार नहीं करें क्योंकि कोई भी योग्यता और बल अपना निजी नहीं है, समाज के द्वारा प्रभु ने दिया है और दाता ने ऐसे ढंग से दिया है कि लेनेवाला गलती से मान बैठता है कि मेरा है।

मिली हुई योग्यता का 'बहुजनहिताय-बहुजनसुखाय' सदुपयोग करो और उसका अभिमान नहीं करो, अहंकार नहीं करो, वाहवाही का रस न लो तो अंतरात्मा का रस प्रकट हो जायेगा, परमात्मा प्रकट हो जायेगा बिल्कुल पक्की बात है। इसमें देर की बात नहीं। स्नातक होने में तो पन्द्रह साल लगेंगे, एक कक्षा उत्तीर्ण होने में तो एक साल लगेगा परंतु इसमें साल की भी जरूरत नहीं । चालीस दिन में ईश्वरप्राप्ति हो गयी मेरे

को । शुकदेवजी महाराज की कृपा से राजा परीक्षित को सात दिन में यह बात समझ में आ गयी । दो मुहूर्त में भी यह बात समझ लो तो हो गया काम ।

यह सिद्धांत मूल में उपनिषदों का है । जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने दोहराया है ।

ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुंजीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम्॥

यह वेद-वचन है कि 'यह सारा जगत ईश्वरीय सत्ता से व्याप्त है। इसमें आसक्त मत होओ, अनासक्त होकर त्यागपूर्वक इसका उपभोग (उपयोग) करो।'

मिली हुई चीज के भोगी न बनो, उपयोग करो । अपनी योग्यता बहुतों के हित में लगा दो और फिर अहंकार को न पोसो।

सब तुम्हारे तुम सभीके फासले दिल से हटा दो ।

कोई चाहता है कि मेरा नौकर बेईमान या बुरा पुरुष हो ? दोस्त, साथी या पति झूठा पुरुष हो ? नहीं। तो आप मेरी इतनी प्रार्थना मान लो कि मिली हुई योग्यता का सदुपयोग हो और आप किसीका बुरा न चाहो, एक-दूसरे का मंगल चाहो बस ! फिर आपकी माँग सारी दुनिया को है ।

झूठ-कपट काहे को करना, बेईमानी काहे को करना ? आपको झूठ बोलने की आदत है, उस आदत को आप नहीं निकालोगे तो दूसरा कौन निकालेगा ? इस असाधन को निकालने के लिए सुबह दृढ़ संकल्प करो। प्राण को खींचो, रोको और फिर प्रार्थना करो : 'हे रामजी ! मेरी वृत्ति को सत्यनिष्ठ बनाओ।' और दृढ़ संकल्प करो कि 'अब मैं झूठ बोलने की आदत से अलविदा लेता हूँ। ॐ... ॐ... ॐ...'

व्यवहार में जो भी झूठ-कपट है या असाधन है उसको निकालने के लिए आप डट जाओ बस ! तो नित्य वस्तु परमात्मा तो बाट देखता है प्रकट होने के लिए । इसलिए तो संत लोग इतनी मेहनत कर रहे हैं, भगवान संतों के द्वारा इतना झमेला करवा रहे हैं। संतों के हृदय में बैठ के भगवान ही तो कर रहे हैं... भगवान हमारे हृदय में प्रकट नहीं होना चाहते तो हमें श्रद्धालु माता-पिता न मिलते, सत्संग न मिलता, भगवान का नाम अच्छा नहीं लगता, ऐसी बुद्धि नहीं मिलती, ऐसा ज्ञान सुनने को नहीं मिलता कि भगवान हमारे हृदय में प्रकट होना चाहते हैं, यह बात हम सुन भी नहीं सकते।

भगवान सत्य से राजी रहते हैं, झूठ से नाराज होते हैं । झूठ से भगवान नाराज होते हैं इसका क्या प्रमाण है ?

झूठ बोलने पर भगवान हमारे दिल की धड़कन बढ़ा देते हैं और हमारे हृदय में लानत बरसाते हैं - यह प्रमाण है । दूसरी बात जिसके साथ झूठ-कपट का व्यवहार करते हैं उसके हृदय में भी देर-सवेर प्रेरणा कर देते हैं कि यह झूठ बोल रहा है। झूठे के प्रति अंदर में इतना आदर नहीं रहता। ईमानदार, सच्चे आदमी को सच्चे तो चाहते ही हैं लेकिन झूठे आदमी भी सच्चे आदमी का आदर करते हैं । जब शरीर मरनेवाला है तो उसके लिए झूठ-कपट क्यों करें बाबा !

सत्य को ब्रह्म वरण करता है । सच्चे व्यक्ति को ब्रह्म-परमात्मा वरण करते हैं, पसंद करते हैं । मैं आपको परमात्मा नहीं दे सकता हूँ अथवा आप भगवान को पा नहीं सकते हो । आप भगवान को पा लें यह आपकी ताकत नहीं है और मैं आपको भगवान दे दूँ यह मेरे वश का नहीं है । भगवान आपको पसंद करेंगे फिर मेरे द्वारा कैसे भी काम पूरा हो जायेगा । आपको भगवान पसंद करेंगे तब यहाँ से संकल्प उठेगा । मेरे को प्रभु ने पसंद किया तब मेरे गुरुदेव के हृदय से कृपा बरसी। नहीं तो मेरे गुरु तो कृपा करना चाहते थे, उसके लिए तो सत्संग करते थे । मेरे को परमात्मा ने पसंद किया तब गुरु के हृदय के द्वारा उनकी कृपा बरसी।

तो भगवान पसंद कैसे करें ? भगवान सत् हैं कि असत् हैं ? सत् हैं । भगवान नित्य हैं कि अनित्य हैं ? नित्य हैं। तो जो सत्य हैं वे नित्य हैं और वे ही हमें प्रिय होने चाहिए तथा जो असत् है, अनित्य है उसका उपयोग कर लो, बस ! ■

भक्ति से खिलनेवाले दस गुण
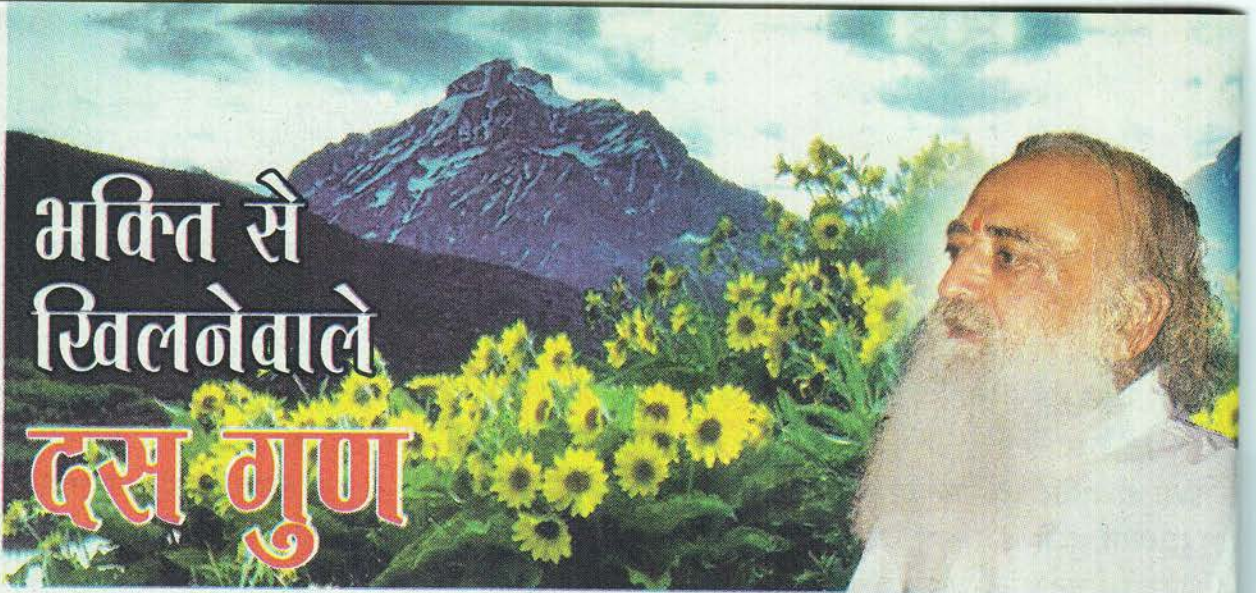
- पूज्य बापूजी के सत्संग से

भगवद्भक्ति सारे दुःखों और कष्टों को हरनेवाली है। भगवद्भक्त के जीवन में ये १० गुण पाये जाते हैं :

(१) सम्मान :

जिसके प्रति आपकी भक्ति है उसके लिए हृदय में सम्मान होना चाहिए । जैसे - अर्जुन भगवान श्रीकृष्ण को देखते तो उठ खड़े होते, गद्गद हो जाते ।

(२) बहुमान :

जिसके प्रति आपकी भक्ति है, उसका स्मरण करानेवाले के प्रति भी आपके मन में बहुमान हो । जैसे - राजा इक्ष्वाकु कमल के फूल अथवा मेघ को देखते तो सोचते कि 'मेरे ठाकुर भी कमललोचन हैं, मेघवर्ण हैं...' इससे राजा का हृदय आनंदित हो उठता था ।

(३) प्रीति, तृप्ति और आनंद :

लोभी की प्रीति धन में होती है, तृप्ति भोजन से होती है और आनंद मनचाही वस्तु मिलने से होता है । भक्त की प्रीति भगवान में होती है, तृप्ति भगवान के जप व ध्यान से होती है और आनंद भी इन्हींसे आता है । लोभी तो बंधन में पड़ेगा किंतु भक्त भगवद्भक्ति के प्रभाव से मुक्त हो जायेगा ।

सुदामा गरीब ब्राह्मण थे । विदुर साधारण स्थिति में जीते थे किंतु उनकी प्रीति, तृप्ति और आनंद भगवान से जुड़े थे । शबरी भीलन गुरु के आश्रम में भले झाड़ू-बुहारी करती थी किंतु गुरु में उसकी प्रीति थी, गुरु के ज्ञान से वह तृप्त और आनंदित रहती थी तो शबरी के बेर खाने में भगवान श्रीराम ने संकोच नहीं किया। कैसी है भक्ति की महिमा !

(४) विरह :

भगवान के लिए तड़प हो, विरह हो । जैसे कामी कामिनी के लिए और लोभी धन के लिए तड़पता है, ऐसे ही गोपियाँ भगवान के विरह में तड़पती थीं, रोती थीं । 'भगवान कब मिलेंगे ? कैसे मिलेंगे ?' - इस प्रकार का विरह हो, भक्तिभाव में आँसू बहें, यह भी भक्ति का एक अंग है ।

(५) इतर विचिकित्सा :

अपने इष्ट में किसी प्रकार का संदेह न होना एवं केवल उन्हींमें दृढ़ निष्ठा होना यह पाँचवाँ गुण है ।

(६) महिमा वृद्धि :

अपने भगवान, इष्ट या गुरु की महिमा बढ़ाने का भाव छठा गुण है । जो अपने गुरु की, भगवान की महिमा नहीं जानते हैं, उन्हें बताना - यह भी एक प्रकार की भक्ति है ।

(७) तदर्थ प्राणस्थान :

भगवान के लिए ही प्राणों की रक्षा करना, यह सातवीं भक्ति है । भगवान श्रीरामजी अपनी लीला समेट रहे थे । हनुमानजी ने कहा : 'प्रभु ! मैं तो धरती पर तब तक रहूँगा जब तक आपके प्यारे संत आपका नामगान और आपकी कथा करते रहेंगे । मैं कोई रूप बनाकर आपकी कथा में जाया करूँगा ।''

हनुमानजी चिरंजीवी हैं । अभी भी हैं । वे कब, कहाँ, किस रूप में आकर विराजें और हरिकथा सुनें, यह

जानना किसी विरले के वश की बात है । **प्रभु चरित्र सुनिबे को रसिया** । ऐसे हैं हनुमानजी !

(८) तदीयता :

'सब भगवान का है, सबमें भगवान हैं, सब भगवान में हैं और सब भगवान से हैं ।' ऐसा भाव रखना यह आठवाँ गुण है ।

(९) सबमें भगवद्भाव :

जड़-चेतन की गहराई में परमेश्वर के दर्शन करना- यह नौवाँ गुण है । जैसे, प्रह्लादजी सबकी गहराई में अपने परमेश्वर को ही देखा करते थे ।

(१०) अप्रतिकूलता :

विपरीत अवस्था में भी अनुकूल भाव लाना । जैसे, भगवान श्रीकृष्ण ने हथियार न लेने की अपनी प्रतिज्ञा तोड़कर हथियार उठाया और रथ का पहिया लेकर भीष्म को मारने चले । श्रीकृष्ण का विपरीत व्यवहार देखकर भी भीष्म कहते हैं : 'आओ, आओ, फेंक मारो चक्र । अपने भक्त को अपने ही हाथों से मारो । इससे मेरी मुक्ति ही होगी । तुम जो करोगे केशव ! अच्छा ही करोगे ।'

भीष्म अपने प्रतिद्वंद्वी अर्जुन से कहते हैं कि 'और तीर आने दे, शाबाश है वीर !' क्योंकि वे जानते हैं कि अर्जुन किसकी प्रेरणा से बाण चला रहा है ।

आज का कोई भक्त होता तो सोचता, 'अरे ! जिनकी भक्ति करता हूँ वे ही मरवा रहे हैं !' नहीं-नहीं, पराभक्ति तो यह है कि तेरा प्यार तो प्यार है ही किंतु तेरी डाँट और मार में भी तेरी करुणा ही है । भगवान ! तू जो भी देता है, मुझे मंजूर है ।

जो तुधु भावै साई भली कार ॥

तू सदा सलामति निरंकार ॥

(जपुजी साहिब)

भगवान की भक्ति से इस प्रकार के १० गुण भक्त के जीवन में उभरते हैं अथवा जो इन १० गुणों को अपना लेता है उससे प्रभु दूर नहीं रहते और वह प्रभु से दूर नहीं रहता । **सो प्रभ दूर नहीं, प्रभ तू है...** ऐसा उसका अनुभव हो जाता है । ■

विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविर

विद्यार्थियों के जीवन को आदर्श सुसंस्कारों से सम्पन्न बनाने हेतु पूज्य बापूजी की प्रेरणा से **'विद्यार्थी उज्ज्वल भविष्य निर्माण शिविरों'** का देश भर में आयोजन विद्यार्थी समुदाय के लिए संजीवनी साबित हो रहा है।

वर्ष २००७ की गर्मी की छुट्टियों में शिविरों को अधिक व्यापक रूप देने हेतु आश्रम व समितियाँ अधिक-से-अधिक क्षेत्रों में शिविर आयोजित करें । जिससे गत वर्ष से भी अधिक बालक-बालिकाएँ इनका लाभ प्राप्त कर उत्तम सुसंस्कारों से सम्पन्न, तेजस्वी एवं मेधावी बनें, साथ ही शैक्षणिक व आध्यात्मिक प्रतिभा से समृद्ध होकर सफल विद्यार्थी एवं राष्ट्र के आदर्श नागरिक बनें।

आप १, २, ३ अथवा ५ दिवसीय आवासीय/गैर आवासीय शिविर आयोजित कर सकते हैं । शिविर आयोजन के लिए शिविर सामग्री तथा अन्य विचार-विमर्श एवं सहयोग हेतु **'बाल संस्कार मुख्यालय, अमदावाद'** की मदद ले सकते हैं।

वेदांत-वचनामृत

ब्रह्मलीन स्वामी श्री लीलाशाहजी महाराज के प्रवचन से

स्वामीजी : ''आनंद, आनंद और आनंद... सब आनंद चाहते हैं परंतु भाइयो ! जब तक टोली (दोषों) से बचोगे नहीं तब तक स्वतंत्र आनंद कि जिसमें दीनता नहीं है, जिसे ब्रह्मानंद, आत्मानंद, अखंडानंद व निजानंद कहा जाता है, उस स्वयं प्रकाशित, ज्योतिस्वरूप, वास्तविक आनंदघन, आत्मस्वरूप, परब्रह्म में स्थिति नहीं हो सकेगी।

मलिन मन जब तक न जीती हुई इन्द्रियों, पाँच विषयों (अपवित्र शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गंध), काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार आदि विकारों तथा ईर्ष्या (जिसे वेद में हृदय-अग्नि कहा गया है), कुसंग, बुरे संकल्प, दुष्कर्म आदि से मुक्त नहीं होगा, तब तक ब्रह्मानंदरस का पान नहीं कर सकेगा।

अविद्या, अहंभाव, राग, द्वेष, आसक्ति आदि को टोली समझो। इस टोली से बचो। इस टोली से बचने के बाद जो आनंद प्राप्त होता है, वह आनंद ऐसा है कि **यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः ।** अर्थात् वह आनंद प्राप्त होने के बाद अन्य किसी लाभ की कामना नहीं रहती।''

(गीता : ६.२२)

एक सज्जन ने संदेह व्यक्त किया : ''महाराज ! आपने कथा में कहा था कि अखंडानंद प्रभु परमात्मा हमारे प्राण हैं। वे स्वयं शुद्ध, बुद्ध, आनंद स्वरूप हैं तो फिर निजस्वरूप को पाने के लिए काम-क्रोधादि की टोली से बचने की क्या आवश्यकता है ?''

स्वामीजी : ''आपकी बात यथार्थ है परंतु जब तक हमारा मन स्थिर नहीं होता, इच्छाओं की निवृत्ति, वैराग्य और संतोष नहीं होता, तब तक स्वरूपानंद में स्थिर नहीं हो सकते।

श्री हरदयाल महाराज भी कहते हैं कि योगी हृदय-निवास, भोगी हृदय-उदास।''

जिज्ञासु : ''महाराज ! क्या भोगियों के हृदय में भगवान नहीं रहते ?''

स्वामीजी : ''प्यारे ! आनंदस्वरूप परब्रह्म भोगियों के हृदय में भी रहते हैं परंतु जब तक उनका मन विषय-भोगों के पीछे दौड़ता है, तब तक उन्हें नित्यानंद का लाभ नहीं मिल सकता।

'श्रीमद्भगवद्गीता' के छठे अध्याय के ३६ वें श्लोक में भगवान श्रीकृष्णचंद्रजी ने कहा है :

असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः ।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः ॥

'जिसने मन को वश में नहीं किया है, वह ज्ञानयोग प्राप्त नहीं कर सकता। जिसने मन को वश में किया है तथा जो प्रयत्नशील है वह ज्ञानयोग प्राप्त कर सकता है, ऐसा मेरा मत है।'

भगवान श्रीकृष्णचंद्र के इन वचनों से सिद्ध होता है कि मन को वश किये बिना परमात्मा की प्राप्तिरूप योग दुर्लभ है।

फिर भी कोई ऐसा चाहे कि मन अपनी इच्छानुसार निरंकुश बनकर विषय-भोग में स्वच्छंदता से घूमा करे और भगवदानंद में पूर्णरूप से स्थित हो जाय तो यह उसकी गलती है। दुःखों की निवृत्ति और आनंदमय परमात्मा की प्राप्ति चाहनेवालों को मन को वश में रखना सीखना ही पड़ेगा।

अब कहो कि मन को वश में रखने का उपाय क्या है ? 'श्रीमद्भगवद्गीता' में आता है :

अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते ।

अर्थात् हे कुंतीनंदन ! अभ्यास और वैराग्य से मन का निग्रह हो सकता है।

'योगदर्शन' में महर्षि पतंजलि लिखते हैं :

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।

अर्थात् अभ्यास और वैराग्य से वृत्तियों का निरोध हो सकता है।''

जिज्ञासु : ''कृपा करके वैराग्य का स्वरूप भी समझायें।''

स्वामीजी : ''संक्षेप में समझाता हूँ - जो सांसारिक

पदार्थ अविचार से सुन्दर व आनंदमय भासते हैं, उनके विषय में विचार करने से समझ में आता है कि संसार के किसी पदार्थ में सुन्दरता या आनंद नहीं है । ऐसा दृढ़ निश्चय होने के बाद साधक इन सांसारिक विषयों में फँसता नहीं है।''

जिज्ञासु : ''महाराज ! तो क्या वैराग्य, संतोष व विषय-इच्छाओं की निवृत्ति से सुख प्राप्त होता है ?''

स्वामीजी : ''हाँ, देखो निद्रावस्था में इच्छा की निवृत्ति होने से जो आनंद प्राप्त होता है, वह कहाँ से आता है ? क्या बाहर से आता है ? नहीं, वह आनंद बाहर से नहीं आता। वह अपने-आप मिलता है। यह हर किसीका अनुभव है । सुषुप्ति अवस्था में आनंद कहाँ से प्रकट हुआ ? तब मन और इन्द्रियाँ शांत होती हैं, कोई इच्छा नहीं होती।

किसी महापुरुष ने वास्तव में सच ही कहा है कि वैराग्य से आनंद प्राप्त होता है।

अतः वैराग्य धारण करो क्योंकि हम सब आनंद चाहते हैं। प्राणिमात्र को आनंद की भूख है। इसकी प्राप्ति के लिए मनुष्य बड़े-बड़े कष्टों का सामना करता है। दुर्गम व भयावह स्थान में प्रवेश करते वक्त क्यों हिचकिचाता नहीं ? उत्साह भंग क्यों नहीं होता ? क्यों ? केवल आनंद पाने के लिए ही न ?

लौकिक और पारलौकिक किसी भी कार्य में यदि एकचित्त से संलग्न रहा जाय तो आनंद की प्राप्ति होगी, सुख मिलेगा परंतु काम में सुख कब मिलता है, इस विषय में अधिकतर लोगों ने अब तक सोचा ही नहीं है।

हमें मिठाई की इच्छा हुई । मिठाई मिली, मिठाई खायी तो हमें सुख का अनुभव हुआ। इस सुख का कारण है मिठाई खाते समय तुम्हारी मिठाई खाने की इच्छा निवृत्त हुई। कुछ समय के लिए भी मिठाई खाने की इच्छा न रही, इससे संतोष उत्पन्न हुआ । इस प्रकार इच्छा-निवृत्ति ही वैराग्य, संतोष व आनंद की प्राप्ति का मूल कारण है।

तुम्हें कोई विषय प्रिय लगता है तो उसको प्राप्त करना चाहते हो। उसे पाने के लिए तुम दुःखी होते हो। उसे पाने के लिए पूरे जी-जान से प्रयत्न करते हो। कुछ समय के लिए तुम्हें वह मिल जाता है तो तुम उसका उपभोग करते हो, इससे तुम्हें सुख व आनंद मिलता है। उपभोग के बाद कुछ समय के लिए मन को संतोष होता है, इच्छा-निवृत्त हो जाती है। इससे भोग से वैराग्य उत्पन्न होता है।

सिद्धांत यह फलित होता है कि विषय-भोग में कुछ क्षण के लिए आनंद मिलता है, तब हृदय से इच्छा की निवृत्ति होती है, मन भोग से हट जाता है तथा हृदय में संतोष और वैराग्य उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार विचार करने से समझ में आता है कि सुख व आनंद का वास्तविक साधन वैराग्य एवं संतोष ही है।

वैराग्य के बिना रजोगुणी वृत्ति दबती नहीं है और जब तक रजोगुणी वृत्ति रहती है, तब तक आनंद की स्थिति कैसे टिक सकती है ?

आत्मज्ञान व आत्मानंद के लिए सत्त्वगुणी वृत्ति चाहिए।

जो संसार के विषयों से विरक्त नहीं है उसे संतोष नहीं है और इससे वह दुःखी है। जिसका ममत्व दूर नहीं हुआ उसने वास्तविक स्वरूप, ब्रह्मानंद नहीं पाया है परंतु जिसका मन संसार से बिल्कुल निवृत्त हो गया है, जिस महापुरुष के हृदय में सच्चा संतोष और वैराग्य उत्पन्न हुआ है वही ममत्व हटाकर परमात्म-पद को पाता है।

ऐसे ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष सुखस्वरूप, आनंदस्वरूप और साक्षात् सच्चिदानंदघनस्वरूप परब्रह्म ही हैं।

यदि एक घण्टे के लिए भी हमारे में सच्चा वैराग्य उत्पन्न हो जाय तो हम अपने भीतर ही उस आनंदस्वरूप को अवश्य पा सकेंगे। उसे परमात्मा कहते हैं।

वह मनुष्य धन्य है कि जो जीवन्मुक्त है, जिसके हृदय में संतोष और वैराग्य है क्योंकि वैराग्य ही सुख का मूल व आनंद का जनक है। किसी महापुरुष ने लिखा है :

वैराग्य बिना राग न छूटे, विषय अति बलवान।

अतः सदैव सत्संग करो-करवाओ तथा शास्त्रों का अध्ययन करो, करवाओ - ये साधन सहायक हैं परंतु पूर्ण आनंद में स्थिति तो तभी होती है जब ऊपर बतायी गयी टोली से सावधान रहें।

हरि ॐ शांति... शांति... शांति...'' ■

(आश्रम की पुस्तक 'निरोगता के साधन' से)

खास बात

– स्वामी श्री रामसुखदासजी महाराज

मनुष्य ने यह समझ रखा है कि मन को कब्जे में करना बहुत आवश्यक है । मन नहीं लगा तो कुछ नहीं हुआ । 'राम-राम' करो पर मन लगा नहीं तो क्या फायदा ? मन लग जाय तो ठीक हो जाय परंतु मन का लगना या न लगना खास बात नहीं है । मन में संसार का जो राग है, आसक्ति है, प्रियता है, यही अनर्थ का हेतु है । मन लग भी जायेगा तो सिद्धियों की प्राप्ति हो जायेगी, विशेषता आ जायेगी परंतु जब तक संसार में आसक्ति है, कल्याण नहीं होगा। जब भीतर से राग और आसक्ति निकल जायेगी, तब जन्म-मरण छूट जायेगा । दुःख होगा ही नहीं क्योंकि राग और आसक्ति ही सब दुःखों का कारण है।

पदार्थों में, भोगों में, व्यक्तियों में, वस्तुओं में, घटनाओं में जो राग है, मन का खिंचाव है, प्रियता है, वही दोषी है । मन की चंचलता इतनी दोषी नहीं है । वह भी दोषी तो है परंतु लोगों ने केवल चंचलता को ही दोषी मान रखा है । वास्तव में दोषी है यह राग, आसक्ति और प्रियता । साधक के लिए इस बात को जानने की बड़ी आवश्यकता है कि संसार की प्रियता ही वास्तव में जन्म-मरण देनेवाली है।

ऊँच-नीच योनियों में जन्म होने का हेतु गुणों का संग है । आसक्ति और प्रियता की तरफ तो ख्याल ही नहीं है पर चंचलता की तरफ ख्याल होता है । विशेष लक्ष्य इस बात का रखना है कि वास्तव में प्रियता बाँधनेवाली चीज है । मन की चंचलता उतनी बाँधनेवाली नहीं है । चंचलता तो नींद आने से भी मिट जाती है परंतु राग उसमें रहता है । राग (प्रियता) को लेकर वह सोता है।

मेरे को इस बात का बड़ा भारी आश्चर्य है कि मनुष्य राग को नहीं छोड़ता ! आपको रुपये बहुत अच्छे लगते हैं । आप मान-बड़ाई प्राप्त करने के लिए १०-२० लाख रुपये खर्च भी कर दोगे परंतु रुपयों में जो राग है वह आप खर्च नहीं कर सकते । रुपयों ने क्या बिगाड़ा है ?

रुपयों में जो राग है, प्रियता है, उसको निकालने की जरूरत है । इस तरफ लोगों का ध्यान ही नहीं है, लक्ष्य भी नहीं है । इस वास्ते आज कहता हूँ । आप इस पर ध्यान दें । यह जो राग है, इसकी महत्ता भीतर में जमी हुई है । वर्षों से सत्संग करते हैं, विचार भी करते हैं, उन पुरुषों का भी ध्यान नहीं जाता कि इतने अनर्थ का कारण क्या है ? व्यवहार में, परमार्थ में, खाने-पीने, लेन-देन में सब जगह राग बहुत बड़ी बाधा है । यह हट जाय तो आपका व्यवहार भी बड़ा सुगम और सरल हो जाय, मीठा हो जाय । परमार्थ और व्यवहार में भी उन्नति हो जाय।

विशेष बात यह है कि आसक्ति और राग खराब हैं । सत्संग की बातें सुन लोगे, याद कर लोगे पर राग के त्याग के बिना उन्नति नहीं होगी । प्रश्न है कि मन की चंचलता कैसे दूर हो ? पर मूल प्रश्न यह होना चाहिए- राग और प्रियता का विनाश कैसे हो ? भगवान ने 'गीता' में इस राग को पाँच जगह बताया है।

इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे रागद्वेषौ व्यवस्थितौ ।

(गीता : ३.३४)

स्वयं में, बुद्धि में, मन में, इन्द्रियों में और पदार्थों में- इन पाँच जगहों में राग बैठा है । इनमें भी गहराई से देखा जाय तो मालूम होगा कि 'स्वयं' में जो राग है, वही शेष चार में स्थित है । मूल में यह राग 'स्वयं' में स्थित है। अगर 'स्वयं' का राग मिट जाय तो आप निहाल हो जाओगे। चित्त चाहे चंचल हो परंतु राग के स्थान पर भगवान में प्रेम हो जाय तो राग का खाता ही उठ जायेगा। भगवान में आकर्षण होते ही राग खत्म हो जायेगा।

भगवान से प्रेम हो, इसकी बड़ी महिमा है । भगवत्प्रेम के समान दूसरा कुछ नहीं है । भगवान में प्रेम हो जाय तो सब ठीक हो जाय । वह प्रेम कैसे हो ? संसार से राग हटने से भगवान में प्रेम हो जायेगा । राग कैसे हटे ?

भगवान में प्रेम होने से। दोनों ही बातें हैं : राग हटाते जाओ और भगवान से प्रेम बढ़ाते जाओ । पहले क्या करें ? भगवान में प्रेम बढ़ाओ । भगवान की कथा प्रेम से सुनने से भीतर का राग स्वतः ही मिटता है और प्रेम जागृत होता है । उसमें एक बड़ा विलक्षण रस भरा हुआ है । पाठ का साधारण अभ्यास करने से आदमी उकता जाता है परंतु जहाँ रस मिलने लगता है, वहाँ आदमी उकताता नहीं। तो इसमें एक विलक्षण रस भरा है - प्रेम।

आप करके देखो। उसमें मन लगाओ । भक्तों के चरित्र पढ़ो, उससे बड़ा लाभ होता है क्योंकि वह हृदय में प्रवेश करता है । जब प्रेम प्रवेश करेगा तो राग मिटेगा, कामना मिटेगी। उनके मिटने से निहाल हो जाओगे। यह विचारपूर्वक भी मिटता है पर विचार से भी विशेष काम देता है प्रेम।

प्रेम कैसे हो ? जो संत, ईश्वरभक्त जीवन्मुक्त हो गये हैं, उनकी कथाएँ सदा मन को शुद्ध करने के लिए हैं। मन की शुद्धि की आवश्यकता बहुत ज्यादा है। मन की चंचलता की अपेक्षा अशुद्धि मिटाने की बहुत ज्यादा जरूरत है। मन शुद्ध हो जायेगा तो चंचलता मिटाना बहुत सुगम हो जायेगा । निर्मल होने पर मन को चाहे कहीं पर लगा दो।

पारमार्थिक मार्ग में, अविनाशी ईश्वर में, भगवान की कथा में अगर राग हो जाय तो प्रेम हो जायेगा। भगवान में, भगवान के नाम में, गुणों में, लीला में आसक्ति हो जाय तो बड़ा लाभ होता है। उत्पन्न और नष्ट होनेवाली वस्तुओं के द्वारा किसी तरह से सेवा हो जाय, यह भाव रखना चाहिए। अपने स्वार्थ और अभिमान का त्याग करके सेवा करें तो भी राग मिट जाता है। ■

उसका नाम ब्रह्म नहीं है

- श्री अखंडानन्द सरस्वतीजी

'राधा स्वामी पंथ' के एक महात्मा के पास मैं गया था। उन्होंने बताया कि यह शरीर तो एक पिण्ड है और उसके ऊपर ब्रह्माण्ड है। उसके ऊपर माया है और माया के बाद विशुद्ध चैतन्य है तथा विशुद्ध चैतन्य में फिर लोक हैं - अगम लोक, अलख लोक । यह जीव जो है, सो तो पिण्ड में है और ब्रह्मा-विष्णु-महेश ब्रह्माण्ड में हैं। यह श्रीकृष्ण की वंशी-ध्वनि, सोहं-नाद और ब्रह्म- ये सब माया-मण्डल की चीज हैं और उसके बाद विशुद्ध चैतन्य। उसके और ऊपर, और ऊपर, और ऊपर, उसके बाद फिर अगम लोक है, अलख लोक है, फिर राधा स्वामी धुर्धाम है। यह जो ऊपर-नीचे होता है, उसको वेदांत की भाषा में ब्रह्म नहीं बोलते हैं ।

मैंने कहा कि महाराज ! आपने तो अपने बेटे का ही नाम ब्रह्म रख लिया, वेदांत में तो इसको ब्रह्म नहीं बोलते हैं। जो किसी घेरे में हो वेदांत में उसका नाम ब्रह्म नहीं है। जो उम्रवाला हो उसका नाम वेदांत में ब्रह्म नहीं है और जो अपने से अन्य हो उसका नाम वेदांत में ब्रह्म नहीं है। आपने तो अपने बेटे का ही नाम ब्रह्म रख लिया और फिर आप एक दिन कहोगे कि ब्रह्म मर गया और एक दिन कहोगे कि ब्रह्म पैदा हो गया, एक दिन कहोगे कि ब्रह्म विलायत गया है यात्रा करने। ब्रह्म को तो समझा नहीं, चाहे किसीका भी नाम ब्रह्म रख लिया। स्वामी रामतीर्थ के बेटे का ही नाम ब्रह्म है, हमारे साधुओं में कई ब्रह्मजी हैं - ऋषिकेश में कई ब्रह्मजी हैं, वृन्दावन में भी ब्रह्मजी हैं- परमहंस आश्रम में रहते हैं उनका नाम ब्रह्मजी है। वे जब मर जायेंगे तब कहेंगे कि ब्रह्म मर गया तो ऐसे नहीं। ■
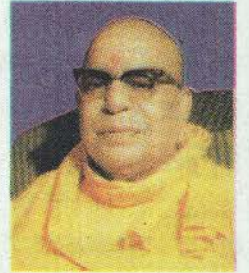
नैर्ऋत्य स्थल की महत्ता

ईशान रखें नीचा, नैर्ऋत्य रखें ऊँचा। यदि चाहते हो वास्तु से अच्छा नतीजा ॥

किसी भी वास्तु में ईशान के समान महत्ता रखनेवाला दूसरा स्थल है 'नैर्ऋत्य स्थल'। कमरे अथवा भूमिखंड की दक्षिणी व पश्चिमी दीवालों अथवा बाजुओं के एक तिहाई-एक तिहाई भाग से जो स्थल बनता है, वह 'नैर्ऋत्य स्थल' कहलाता है (चित्र देखें)।
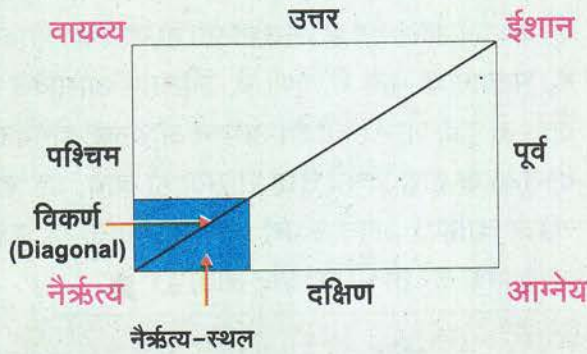
जो लोग सुख, समृद्धि एवं ऐश्वर्य प्राप्ति के इच्छुक हैं, उन्हें अपने वास्तु के ईशान व नैर्ऋत्य स्थल तथा ब्रह्मस्थान (वास्तु (मकान या इमारत) का मध्य भाग) सर्व प्रकार से दोषमुक्त बनाने पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

शास्त्रों में नैर्ऋत्य स्थल को गृहस्वामी का स्थान बताया गया है। इसका सीधा संबंध घर या स्थान के स्वामी के स्वास्थ्य, आयु, आय, भौतिक सुख-सुविधा आदि से होता है। आय से होनेवाली बचत भी इसी स्थान द्वारा प्रभावित होती है। इसलिए यदि नैर्ऋत्य कोण में कोई दोष अथवा वास्तुविरुद्ध निर्माण है तो उसे वास्तुसम्मत बनवाना बहुत ही आवश्यक है।

गृहस्वामी द्वारा इस स्थान पर रहने, सोने या फैक्ट्री, दफ्तर, दुकान आदि में बैठने से बाकी सभी लोग उसके कहे अनुसार कार्य करते हैं और आज्ञापालन में विरोध नहीं करते। अपने अधीन कर्मचारी को इस स्थान पर नहीं बैठाना चाहिए, अन्यथा उसका प्रभाव आपसे अधिक हो जायेगा। इस स्थान को कभी भी किराये पर नहीं देना चाहिए। यदि निर्माण बहुमंजिला है तो सबसे ऊपरवाली मंजिल के नैर्ऋत्य स्थल में रहनेवाले व्यक्ति का प्रभाव सबसे अधिक होता है, फिर क्रमशः नीचेवाली मंजिलों के स्थलों का प्रभाव होता है।

घर, फैक्ट्री, कार्यालय आदि का मुख्य द्वार या कोई अन्य द्वार नैर्ऋत्य में खुलता है तो धन-संचय होना अत्यंत कठिन होगा एवं आकस्मिक खर्चों की सम्भावना बढ़ जाती है।

दक्षिण एवं पश्चिम दिशा की दीवारें यदि आपस में ९०° का कोण नहीं बनातीं तो घर, व्यापार, दुकान आदि की उन्नति में प्रयास करने के बाद भी अपेक्षित सफलता नहीं मिलती, इसलिए इस स्थान का एकदम ९०° में होना अत्यंत आवश्यक है। नैर्ऋत्य स्थल का बढ़ा होना अथवा कम होना दोनों ही हानिकारक हैं। यदि नैर्ऋत्य स्थल कटा हुआ है तो भी व्यापार में सफलता नहीं मिलती।

नैर्ऋत्य दिशा में यदि शौचालय अथवा रसोईघर का निर्माण हुआ हो तो गृहस्वामी को सदैव स्वास्थ्य संबंधी मुश्किलें रहती हैं। अतः इन्हें सर्वप्रथम हटा लेना चाहिए। चीनी 'वायु-जल' वास्तुपद्धति 'फेंग शुई' के मत से यहाँ गहरे पीले रंग का ० वॉट का बल्ब सदैव जलता रखने से इस दोष का काफी हद तक निवारण संभव है। भारतीय वास्तुशास्त्र में ऐसा विकल्प नहीं है।

इस कोण की भूमि, छत एवं कम्पाउन्ड वॉल ईशान की अपेक्षा ऊँची होनी चाहिए, इस ओर ढलान कदापि नहीं होनी चाहिए। इससे ईशान की ओर से आनेवाली धनात्मक ऊर्जा वास्तु में प्रवेश करेगी और नैर्ऋत्य कोण से बाहर नहीं निकल पायेगी। यह स्थान अन्य स्थानों से नीचा होने पर धन की हानि के साथ-साथ भावी योजनाएँ भी पूरी नहीं होतीं। इस कोण में छज्जा नहीं होना श्रेष्ठ माना गया है। यदि हो तो वह भी ईशान स्थल की अपेक्षा ऊँचा होना चाहिए।

यदि नैर्ऋत्य में कोई कुआँ, हैण्डपम्प, सेप्टिक टैंक अथवा जमीन में किसी भी प्रकार का गड्ढा है तो गृहस्वामी के स्वास्थ्य पर उसका हानिकारक प्रभाव पड़ने की

"...तो श्रीआसारामायण के १०८ पाठ करने-कराने पर कितना लाभ होगा !"

मेरी १४ वर्ष की एक बेटी है । उसके बाद मुझे कोई संतान नहीं हुई । मैं बेटे के लिए परेशान थी । मेरी सासु ने मुझे बहुत दवाइयाँ दीं और इलाज भी करवाया पर कुछ लाभ नहीं हुआ । जब बापूजी उदयपुर आये, तब पति व बेटी सहित मैंने दीक्षा ली । उस समय हम बापूजी के लिए नारियल ले गये थे । बापूजी ने कहा : ''यह प्रसाद अपने घर पर बाँट देना ।''

हमने पुत्रप्राप्ति की इच्छा से 'श्रीआसारामायण' का पाठ और सत्संग का आयोजन किया, फिर वह प्रसाद लिया । उसके एक महीने बाद ही पता चला कि मैं गर्भवती हूँ । बापूजी ने प्रसादरूप में मुझे बेटा दिया ।

मैं सोचती हूँ कि 'श्रीआसारामायण' का मात्र एक पाठ कराने पर जब मुझे यह प्रसाद मिला तो १०८ पाठ करने-करानेवालों को कितना लाभ होता होगा !' मेरा जीवन तो मेरे बापूजी ने ही सँवारा है । **– सीमादेवी सेन, मल्ला तलाई, जि. उदयपुर (राज.)**

निरन्तर सम्भावना रहती है।

इस स्थल पर पानी नहीं होना चाहिए। भूमिगत टंकी तो अत्यंत हानिकारक है। छत के ऊपर की टंकी (ओवर हेड टैंक) हालाँकि इस स्थल को वजन व ऊँचाई प्रदान करता है परंतु जलतत्त्व से युक्त होने के कारण हानिकारक ही है।

नैर्ऋत्य स्थल में कोई भी निर्माण करने के बाद उसे खुला नहीं छोड़ना चाहिए, छत द्वारा तुरंत ढक देना चाहिए। इस स्थल को कभी भी खाली नहीं रखना चाहिए।

नैर्ऋत्य में भूखंड का विस्तार नहीं करना चाहिए। इस दिशा में बिना मूल्य प्राप्त होनेवाला भूखंड भी नहीं लेना चाहिए। नैर्ऋत्य में निर्माण या मरम्मत में ढील या विलम्ब वांछनीय नहीं है। यह जानलेवा भी बन सकता है। समस्त सामग्री इकट्ठी करके ही निर्माण या फेरफार करें।

वास्तु का नैर्ऋत्य स्थल यदि दोषपूर्ण है तो कुछ दशाओं में ऐसे बड़े प्लॉट का परिस्थिति-अनुसार उचित वास्तु-विभाजन कर इस दोष का निवारण किया जा सकता है परंतु प्रत्येक परिस्थिति में यह संभव नहीं है। ■

मंत्रजप से मृत्यु के मुँह से बाहर

१८ अक्टूबर २००६ को मेरी माँ (लक्ष्मीबाई सिद्धप्पा हट्टी, उम्र ५० वर्ष) के पेट में दर्द होने लगा । हम उन्हें अस्पताल में ले गये । आँतों में छेद (Intestinal Perforation) हुआ है इसलिए शीघ्र ऑपरेशन की आवश्यकता बताकर डॉक्टरों ने दो लाख रुपये जमा करने के लिए कहा । दो घंटे ऑपरेशन चला । ऑपरेशन के बाद लंबे समय तक माँ होश में नहीं आयीं । उन्हें कृत्रिम श्वसन यंत्र (Ventilator) लगाया गया था । जब दस दिन तक माँ होश में नहीं आयीं, तब कई बार पूछने पर डॉक्टरों ने अपनी गलती स्वीकार करते हुए बताया : 'ऑपरेशन के समय अॅनेस्थेशिया (बेहोशी की दवा) अधिक देने के कारण मरीज कोमा में चला गया है ।'

हम माँ को दूसरे डॉक्टर के पास ले गये, जिन्होंने माँ का C.T. Scan करने के बाद बताया कि 'अब कुछ नहीं हो सकता ।' दोनों जगह से निराश होकर 'मरता क्या नहीं करता'- हम माँ को घर ले आये और अमदावाद के 'आरोग्य केन्द्र' से संपर्क किया । उन्होंने हमें सिर पर तिल के तेल से मालिश करते हुए कोमा से बाहर लानेवाला खास मंत्र जपने के लिए दिया । मंत्र का प्रतिदिन एक घंटा जप करने की व हाथ-पैरों के तलुओं में सरसों के तेल से मालिश करने की सलाह दी । विधिवत् मालिश एवं जप शुरू करने के एक घंटे बाद ही माँ कोमा से बाहर आ गयीं । छठे दिन से वे बोलने लगीं व दसवें दिन से उन्होंने अन्न-सेवन शुरू कर दिया । अब उनका मस्तिष्क पूर्णतः स्वस्थ है । अब वहाँ के डॉक्टर कहते हैं कि 'यह एक चमत्कार है ।' यह सब तो पूज्य गुरुदेव की असीम कृपा का फल है ।

– श्री अरुण सिद्धप्पा हट्टी
बेलगाँव, कर्नाटक ।
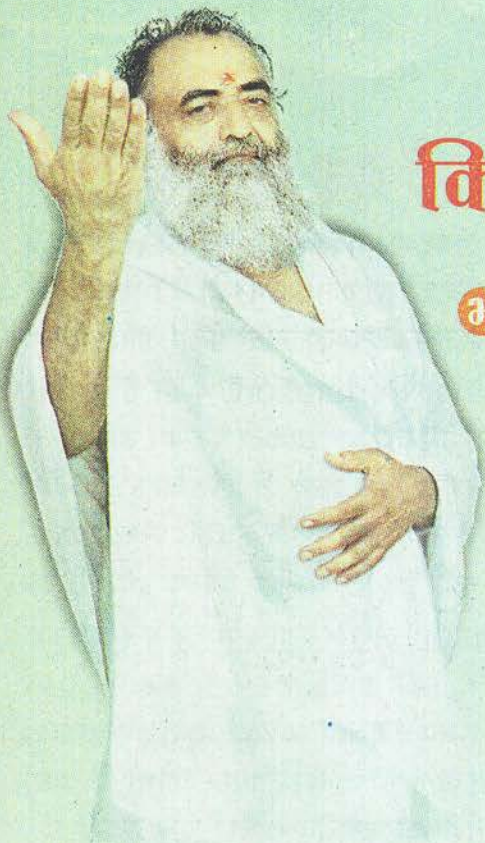
किससे डरें, किससे नहीं ?

- पूज्य बापूजी के सत्संग से

भगवान श्रीकृष्ण दैवी संपदा का वर्णन करते हुए कहते हैं :

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।

(श्रीमद्भगवद्गीता : १६.१)

भय का सर्वथा अभाव, अंतःकरण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता और तत्त्वज्ञान के लिए ध्यानयोग में निरंतर दृढ़ स्थिति - ये दैवी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं ।

भगवान कहते हैं कि जीवन में सफल होना है तो निर्भयता का गुण लाओ । दो प्रकार के भय होते हैं : एक होता है बाहर का भय, दूसरा होता है भीतर का भय । चोर, डाकू या लुटेरे का जो भय होता है वह है बाहर का भय । भीतर का भय है कि कहीं कोई रूठ न जाय, कोई नाराज न हो जाय, ऐसा न हो जाय, वैसा न हो जाय...

इस भय में भी दो विभाग हैं :

एक है हितकारी भय और दूसरा है बरबाद करनेवाला भय । पाप से डरो, भगवान से डरो, माता-पिता का दिल तो दुःखी नहीं होगा, गुरुओं का दिल तो व्यथित नहीं होगा, इस बात का ख्याल रखा- यह है हितकारी भय । अच्छे पुरुष और अच्छे कर्म छूट तो नहीं रहे- इस बात का डर हितकारी डर है लेकिन बुरे कर्म छोड़ दूँगा तो दोस्त रूठ जायेंगे, क्या करूँ ? उसकी हाँ-में-हाँ नहीं करूँगा, सिगरेट-शराब नहीं पीऊँगा तो दोस्ती टूट जायेगी- यह है बरबाद करनेवाला भय । बुरी बात को स्वीकार नहीं करने से यार रूठ जाय तो रूठ जाय, तू अपनी अच्छी बात पर डटा रह । आज सज्जन लोग ज्यादा पीड़ित हो रहे हैं, क्यों ?

क्योंकि 'क्या करें, उसकी हाँ-में-हाँ नहीं करेंगे तो... ' इस प्रकार के भय से पीड़ित हो रहे हैं । इस सिकुड़न के कारण गुण्डा तत्त्व पुष्ट होते जाते हैं । नहीं-नहीं... भगवान कहते हैं कि जीवन में भय का सर्वथा अभाव कर दो, निर्भयता लाओ । डरपोक होकर गुण्डा तत्त्व को पोषण देते हैं तो हम शोषित किये जाते हैं, दबाये जाते हैं, पीसे जाते हैं।

मैंने तो बहुत अनुभव किया है । मैं जब कुत्ते के सामने निर्भय होकर खड़ा रहता हूँ, आँख दिखाता हूँ तो भौंकता हुआ कुत्ता वहीं रुक जाता है और धीरे-धीरे दुम दबाकर भाग जाता है । जब मैं झूठमूठ में भय का अभिनय करता हूँ, भागता हूँ तो कुत्ता मेरे पीछे पड़ता है, कुतिया भी पीछे पड़ती है और कुत्ते के बच्चे भी मेरा पीछा करते हैं । जो आदमी डरता है उसके पीछे दुःखरूप कुत्ता, परेशानीरूप कुतिया और मुसीबतरूप उसके छोटे-मोटे पिल्ले भी पड़ते हैं। इसलिए डरना नहीं चाहिए।

आप भी खुश रहो और दूसरों को भी खुशी बाँटो । न किसीसे डरो और न ही किसीको डराओ । जो स्वयं निर्भीक होगा वह दूसरों को भी निर्भय नारायणतत्त्व की ओर ले जायेगा ।

रात अँधियारी हो, घनी घटाएँ छायी हों, मंजिल तेरी दूर हो, बड़े मजबूर हो तो क्या करोगे ? डर जाओगे ? रुक जाओगे ? ना, रोने लगोगे ? ना, तो क्या करोगे ? ॐ ॐ... आनंद-आनंद... कोशिश करेंगे... हिम्मत करेंगे...

पापी डरें, हिंसक डरें, समाज के शोषक डरें । जो समाज की सेवा करते हैं, दूसरों की भलाई चाहते हैं वे क्यों डरें ? हरि ॐ... ॐ...

भारतीय संस्कृति कहती है कि न गुण्डा बनो और न गुण्डागर्दी चलने दो, न उल्लू बनो और न दूसरों को उल्लू बनाओ । न आप शोषित होओ, न किसीको शोषित करो । आप पढ़ो-लिखो, बुद्धिमान बनो और दूसरों को भी मदद करो । आप भी बलवान बनो और दूसरों के बल को भी बढ़ाओ । आप भी खुश रहो और दूसरों को भी खुशी बाँटो । न किसीसे डरो और न ही किसीको डराओ । जुल्म करना तो पाप है ही, जुल्म सहना भी पाप है । निर्भीक व्यक्ति दूसरों का शोषण नहीं, पोषण करता है । इसलिए जीवन में निर्भयता लानी चाहिए । जो स्वयं निर्भीक होगा वह दूसरों को भी निर्भय नारायणतत्त्व की ओर ले जायेगा ।

निर्भयता का मतलब यह नहीं कि बहू सास का अपमान कर दे । बेटा अपने हितैषी माँ-बाप की बात न माने कि 'मैं तो निर्भय हूँ ।' ऐसी निर्भयता नहीं कि शिष्य गुरु को बोले कि 'मैं निर्भय हूँ । तुम्हारी बात नहीं मानूँगा ।' अगर ऐसी निर्भयता दिखायेगा तो वह गड्ढे में गिरेगा । ■

योगामृत

पवनमुक्तासन

शरीर में स्थित पवन (वायु) इस आसन से मुक्त होता है, इससे इसको 'पवनमुक्तासन' कहते हैं ।

विधि : भूमि पर बिछे हुए आसन पर चित्त होकर लेट जायें । ध्यान मणिपुर चक्र में रखें । अब किसी भी एक पैर को घुटने से मोड़ दें । दोनों हाथों की अंगुलियों को परस्पर मिलाकर उसके द्वारा मोड़े हुए घुटने को पकड़कर पेट के साथ लगा दें । फिर सिर को ऊपर उठाकर मोड़े हुए घुटने पर नाक लगायें । दूसरा पैर जमीन पर सीधा रहे । १० से ३० सेकंड इस स्थिति में रहें फिर सिर और मोड़े हुए पैर को भूमि पर पूर्ववत् रखें । पैर बदलकर यह क्रिया दोहरायें । दोनों पैर एक साथ मोड़कर भी यह आसन हो सकता है ।

आसन करने से पूर्व पूरक करें । मोड़े हुए घुटने को पेट पर दबाने से पहले रेचक करें और अंत में पूरक करके पैर सीधे कर दें ।

लाभ : १. इसके नियमित अभ्यास से पेट की चरबी कम होती है । पेट की मांसपेशियाँ शक्तिशाली बनती हैं ।

२. पेट की वायु नष्ट होकर पेट विकाररहित बनता है ।

३. कब्ज दूर होता है । पेट में अफरा हो तो इस आसन से लाभ होता है । प्रातःकाल में शौचक्रिया ठीक से न होती हो तो थोड़ा पानी पीकर यह आसन १५-२० बार करने से शौच खुलकर होगा ।

४. इस आसन से स्मरणशक्ति बढ़ती है । बौद्धिक कार्य करनेवाले चिकित्सक, वकील, साहित्यकार, विद्यार्थी तथा बैठकर प्रवृत्ति करनेवाले मुनीम, व्यापारी आदि लोगों को नियमित रूप से यह आसन करना चाहिए ।

५. अगर कमर में ज्यादा दर्द हो तो सिर को ऊपर उठाकर नाक को घुटने से न लगायें । पैरों को छाती पर दबाये रखना ही पर्याप्त है । ऐसा करने से स्लिपडिस्क, साइटिका एवं कमरदर्द में पर्याप्त लाभ होता है । ■

ग्रीष्मजन्य व्याधियों के उपाय

(१) सर्वांग दाह : शतावरी चूर्ण (२ से ३ ग्राम) अथवा शतावरी कल्प (१ चम्मच) दूध में मिलाकर सुबह खाली पेट लें । आहार में दूध-चावल अथवा दूध-रोटी लें । आश्रम द्वारा निर्मित रसायन चूर्ण तथा आँवला चूर्ण का उपयोग करें । दोपहर के समय गुलकंद चबा-चबाकर खायें। इससे प्यास, जलन, घबराहट आदि लक्षण दूर हो जाते हैं ।

शीत, मधुर, पित्त व दाहशामक खरबूजे का सेवन भी बहुत ही लाभदायी है किंतु दृष्टि व शुक्र धातु का क्षय करनेवाले तरबूज का सेवन थोड़ी सावधानी से अल्प मात्रा में ही करना अच्छा है ।

(२) आँखों की जलन : रूई का फाहा गुलाबजल में भिगोकर आँखों पर रखें ।

त्रिफला चूर्ण (३ ग्राम) पानी में भिगोकर रखें । २ घंटे बाद कपड़े से छानकर उस पानी से आँखों में छींटें मारें। बचे हुए त्रिफला चूर्ण का पानी के साथ सेवन करें।

(३) नकसीर फूटना : गर्मी के कारण नाक से रक्त आने पर ताजा हरा धनिया पीसकर सिर पर लेप करने से तथा इसका २-४ बूँद रस नाक में डालने से शीघ्र ही लाभ होता है । धनिया की जगह दूर्वा का उपयोग विशेष लाभदायी है ।

(४) लू लगना : थोड़े-थोड़े समय पर गुड़ व भूना हुआ जीरा मिश्रित पानी पीयें । आम का पना, इमली अथवा कोकम का शरबत पीयें । प्याज व पुदीने का उपयोग भी लाभदायी है ।

लू व गर्मी से बचने के लिए रोजाना शहतूत खायें । इससे पेट तथा पेशाब की जलन दूर होती है । नित्य शहतूत खाने से मस्तिष्क को ताकत मिलती है ।

(५) पैरों का फटना : अत्यधिक गर्मी से पैरों की त्वचा फटने लगती है । उस पर अरंडी का तेल या घी लगायें । पैरों के तलुवों में इसे लगाकर काँसे की कटोरी से घिसने से शरीरांतर्गत गर्मी कम हो जाती है तथा आँखों को भी आराम मिलता है । पैरों के तलुवों से आँखों का सीधा संबंध है । क्योंकि पैरों के तलुवों से निकलनेवाली दो नसें आँखों तक पहुँचती हैं, जिससे पैरों में जलन होने पर आँखों में भी जलन होने लगती है । इसलिए गर्मियों में प्लास्टिक अथवा रबर की चप्पल नहीं पहननी चाहिए ।

(६) पेशाब में जलन : तुलसी की जड़ के पासवाली मिट्टी छानकर उसमें पानी मिलायें । सूती वस्त्र पर यह मिट्टी लगाकर नाभि के नीचे पेडू पर रखें । पट्टी सूखने पर बदल दें । गीली मिट्टी की ठंडक पेट की गर्मी को खींच लेती है । यह प्रयोग कुछ समय तक लगातार करने से पेशाब की जलन पूर्णतः मिट जाती है । इसके साथ १०० मि.ली. दूध में ३ से ५ ग्राम शतावरी चूर्ण तथा थोड़ी-सी मिश्री मिलाकर १ से २ बार लें ।

(७) शीतला (चिकन पोक्स) : गर्मियों में बच्चों को होनेवाली इस बीमारी में ज्वर, सर्दी व खाँसी के साथ पूरे शरीर पर राई जैसी छोटी-छोटी फुंसियाँ निकल आती हैं ।

शीतला होने की सम्भावना दिखायी देने पर शीघ्र ही पर्पटादी क्वाथ (परिपाठादि काढ़ा) का उपयोग करें । यह आयुर्वेदिक दवाइयों की दुकान से सहज में मिल सकता है । इससे व्याधि की तीव्रता कम हो जाती है ।

शीतला निकलने पर जब तक बुखार हो, तब तक बच्चे को नहलाना नहीं चाहिए । आहार में मूँग का पानी अथवा चावल का पानी दें । सब्जी, रोटी, दूध, फल आदि बिल्कुल न दें । इससे व्याधि गम्भीर रूप धारण कर सकती है । फुँसियाँ सूखने पर नीम के पत्ते पानी में उबालकर उस पानी से बच्चे को नहलायें तथा वचा चूर्ण शरीर पर मलकर ही कपड़े पहनायें । ■

सुलभ एक्युप्रेशर चिकित्सा

प्रसूति की पीड़ा कम करने हेतु :

दोनों पैरों में टखनों के ऊपर अंदर की तरफ चित्र में दशार्ये गये बिन्दुओं पर भारपूर्वक दो मिनट तक दबाव दें। फिर थोड़ा रुककर पुनः दबाव दें। इस प्रकार बालक का जन्म होने तक रुक-रुककर दबाव देते रहें। इससे प्रसूति की पीड़ा कम होगी।
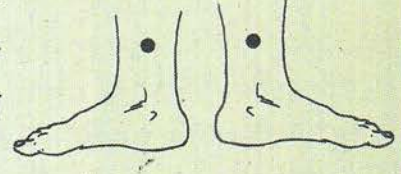
नकसीर फूटना, बेहोश होना तथा लू एवं गर्मी लगने पर :

उँगलियों के सिरों पर तथा चित्रानुसार नाक के नीचे तथा होंठ के ऊपर मध्य बिन्दु पर जोर से दबाव दें और चन्द्रभेदी प्राणायाम करें।

चंद्रभेदी प्राणायाम की विधि :

प्रातः पद्मासन अथवा सुखासन में बैठकर दायें नथुने को बंद करें और बायें नथुने से धीरे-धीरे अधिक-से-अधिक गहरा श्वास भरें। श्वास लेते समय आवाज न हो इसका ख्याल रखें। अब अपनी क्षमता के अनुसार श्वास भीतर ही रोक रखें। जब श्वास न रोक सकें तब दायें नथुने से धीरे-धीरे बाहर छोड़ें। झटके से न छोड़ें। इस प्रकार ३ से ५ प्राणायाम करें।

सावधानी : कफ प्रकृतिवालों व निम्न रक्तचापवालों के लिए यह प्राणायाम निषिद्ध है। अतः वे केवल उपरोक्त बिंदुओं पर दबाव दें।

दवाओं के कुप्रभावों से बचने हेतु

एल.एस.डी. (मारीजुआना), नींद की गोलियाँ, अफीम, गाँजा आदि के सेवन से हुआ कुप्रभाव दूर करने के लिए चित्रानुसार दोनों कानों के ऊपरी भाग से तीन इंच ऊपर के बिंदु पर भारपूर्वक दो-तीन मिनट दबाव दें, दवाओं का दुष्प्रभाव दूर हो जायेगा।

अर्वा इव श्रवसे सातिमच्छेन्द्रस्य
वायोरभि वीतिमर्ष।
स नः सहस्रा बृहतीरिषो दा
भवा सोम द्रविणोवित्पुनानः॥

'हे परमात्मन् ! आप सहस्रों प्रकार के बड़े-बड़े ऐश्वर्यों को देनेवाले हो क्योंकि आप सब प्रकार के ऐश्वर्यों को जाननेवाले हैं। इसलिए ऐश्वर्यों द्वारा पवित्र करते हुए गतिशील विद्युत के समान ऐश्वर्य के लिए यज्ञ को हमारे लिए दें और कर्मयोगी को और ज्ञानयोगी को ज्ञान दें। उक्त गुणसम्पन्न आप हमको ज्ञान प्रदान से पवित्र करें।' **(ऋग्वेद : मं.९, सू.९७, मंत्र २५)**

श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि।
श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः॥

'हमारे द्वारा प्रातः श्रद्धा का आह्वान किया जाता है, दोपहर में एवं सायंकाल में भी श्रद्धा का आह्वान किया जाता है। हे श्रद्धा देवी ! आप हमें इस संसार में श्रद्धावान बनाइये।' **(ऋग्वेद : मं. १०, सू.१५२, मंत्र ५)**

साधकों के लिए

साधक किसीका ऋणी न रहे

स्वावलंबी मनुष्य जितना सुखी और प्रसन्न रहता है, पराधीन व्यक्ति कभी वैसा प्रसन्न नहीं रह सकता । मनुष्य अज्ञान से ऐसा मान लेता है कि मुझे बड़ा भारी अधिकार मिलने या बहुत-सी सम्पत्ति मिलने से मैं सुखी हो जाऊँगा परंतु जैसे-जैसे वैभव बढ़ता है, वैसे-ही-वैसे उसके जीवन में पराधीनता, भय, रोग, भोगासक्ति और कठोरता आदि बढ़ते जाते हैं, जो प्रत्यक्ष ही दुःख के कारण हैं ।

इसलिए साधक को चाहिए कि उसने संसार से जो कुछ लिया है वह वापस लौटाकर अर्थात् प्राप्त हुई सम्पत्ति और शक्ति के द्वारा उसकी सेवा करके उससे उऋण हो जाय तथा उससे कुछ ले नहीं एवं अपने-आपको भगवान को समर्पण करके अर्थात् उनका होकर भगवान से उऋण हो जाय । इस प्रकार जब उस पर किसीका ऋण नहीं रहता, तब अंतःकरण अपने-आप परम पवित्र हो जाता है ।

भगवान से भी यही प्रार्थना करे कि 'भगवन् ! मुझे आप अपने किसी भी काम में आने योग्य बना लीजिये । मैं आपकी प्रसन्नता के लिए आपका खिलौना बन जाऊँ या जिस किसी स्थिति में रहकर आपका कृपापात्र बना रहूँ । मैं अपने अहंकार और वासना में न बहूँ । तेरी करुणा-कृपा में रहूँ । इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए ।'

यदि कोई कहे कि भगवान तो पूर्णकाम हैं, अपनी महिमा में ही सदा प्रसन्न हैं । उनको अपनी प्रसन्नता के लिए जीव की क्या आवश्यकता है ? तो कहना चाहिए कि भगवान की पूर्णता एकदेशीय नहीं होती । वे तो सभी प्रकार से पूर्ण हैं, अतः जिसकी जैसी माँग होती है, उसे वे उसी प्रकार पूर्ण करते हैं । वे पूर्णकाम हैं तो भी अपने आश्रित प्रेमी की माँग पूर्ण करना उनका स्वभाव है । जैसे चंद्रमा का स्वभाव है औषधियों को पुष्ट करना, वैसे ही भगवान का स्वभाव है अपने आश्रित प्रेमी की हितकारी माँग को पूर्ण करना । वे भक्त के भावों की गहराइयों को ठीक से जानते हैं ।

जो सर्वसमर्थ नहीं होता, उस मनुष्य के पास जाक कोई कहे कि 'आप मुझे किसी काम पर रख लीजिये, छोटे-से-छोटा कोई भी काम करने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है ।' तो आवश्यकता न होने पर वह यही कहेगा कि 'मेरे पास अभी कोई काम नहीं है । मैं तुमको नहीं रख सकता ।' क्योंकि वह इतना समर्थ नहीं है कि सभीको रख सके परंतु भगवान तो सर्वसमर्थ हैं । उनके पास तो किसी बात की कोई कमी नहीं है । फिर जो एकमात्र उनका प्रेम ही चाहता है, जिसको अन्य किसी प्रकार के सुख की चाह नहीं है, उसको सर्वसमर्थ प्रभु कैसे निराश कर सकते हैं । वे तो स्वयं उसके प्रेमी बनकर उसे अपना प्रेमास्पद बना लेते हैं । यही उनकी असाधारण महिमा है । प्रेमी अपने हृदय में ही बातें करता है, प्रेरणा पाता है, पथ पाता है ।

जब तक मनुष्य संसार से कुछ लेने की आशा रखता है, तब तक वह कभी सुखी नहीं हो सकता क्योंकि संसार अनित्य और क्षणभंगुर है । उससे जो कुछ मिलता है, उसका वियोग अवश्यंभावी है । इस रहस्य को समझकर जो साधक किसीसे कुछ नहीं चाहता, सबकी सब प्रकार से सेवा करता है और उसके बदले में कुछ भी नहीं लेता, वह सदैव प्रसन्न रहता है । फिर उसका किसीमें भी राग नहीं रहता तथा सभी उससे प्रेम करते हैं, इससे उसका कोई विरोधी नहीं रहता । अतः वह सर्वथा क्रोधरहित और निर्भय हो जाता है । किसी प्रकार की चाह का न रहना एवं लोभ, क्रोध और भय का सर्वथा अभाव हो जाना ही अंतःकरण की परम शुद्धि है । अंतःकरण शुद्ध हो जाने पर योगी को योग, विचारशील को बोध और प्रेमी को प्रेम की प्राप्ति स्वतः हो जाती है । विचार व प्रेम से अंतःकरण शुद्ध होता है और शुद्ध अंतःकरण में स्वतः विचार एवं प्रेम प्रकट होता है । इस प्रकार ये एक-दूसरे के सहायक हैं ।

चित्तशुद्धि के लिए यह अत्यंत आवश्यक हो जाता है कि साधक किसीका ऋणी न रहे अर्थात् जिससे जो कुछ मिला है, वह उसे वापस कर दे और क्षमा माँग ले । उसकी प्रसन्नता किसी और पर निर्भर न रहे । ■

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

सूरत आश्रम (गुज.) में २ से ४ मार्च तक 'ध्यान योग साधना शिविर' सम्पन्न हुआ। होली का रंग, गुरुदेव का संग और उनका पावन सत्संग जब भक्तों को एक साथ प्राप्त होता है, तब उनके सद्भाग्य की तुलना किससे की जाय !

होली अर्थात् हो... ली... जो हो गया, सो हो गया और प्रह्लाद अर्थात् राग-द्वेष-अहंता छोड़कर विशेष आह्लादित, प्रसन्न रहनेवाला । प्रह्लाद की तरह सब परिस्थितियों में सम, प्रसन्न तथा ईश्वर के रंग में रँगे रहने का संदेश देता है होलिकोत्सव पर्व।

हमेशा की तरह इस बार भी यह पर्व सूरत आश्रम के सात्त्विक प्राकृतिक वातावरण में आयोजित हुआ । विशाल संख्या में भक्तों ने यहाँ सद्गुरुदेव के पावन सान्निध्य में पलाश के फूलों से निर्मित, गंगाजल मिश्रित प्राकृतिक रंग से होली खेली । सैकड़ों फुट लम्बे मंच के दोनों ओर जनसैलाब होली और धुलेंडी दोनों दिन उमड़ पड़ा था । पूज्यश्री के करकमलों से रंगों की बौछारों में भीगने के लिए श्रद्धालुवृंद कूदते, फाँदते, हरिॐ का जयघोष करते 'होली महोत्सव' का आनंद ले रहे थे।

पलाश के रंगों के साथ-साथ ज्ञान-रंग बरसाते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''कूँदने-फाँदने का यह त्यौहार होलिकोत्सव स्वास्थ्य पर उत्तम प्रभाव डालता है । इन दिनों उक्त रंगों के शरीर पर पड़ने से उसमें गर्मी सहन करने की शक्ति बढ़ती है तथा मानसिक संतुलन बना रहता है।''

तापी का तट, पूर्णिमा का दिन, होली-धुलेंडी का उत्सव और पूज्यपाद ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु का सान्निध्य- इस चतुर्वेणी संगम में बड़ी संख्या में भक्तों ने शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक प्रसन्नता व हार्दिक उल्लास का मार्ग प्रशस्त किया।

देश भर में कितने लोगों ने रासायनिक रंगों से अपने स्वास्थ्य की हानि की, यह हमने नहीं देखा लेकिन विशाल जनसमूह को यहाँ पलाश के फूलों से निर्मित, प्राकृतिक रंग से होली खेलते हुए देखा, ध्यान, ज्ञान व हरिनाम के नशे में डूबते हुए देखा।

सूरत आश्रम में प्रतिवर्ष आयोजित होनेवाला होलिकोत्सव पूरे विश्व में अपने ढंग का एक अनूठा ही त्यौहार है । स्वास्थ्य, संयम, ज्ञान, ध्यान मिश्रित इस त्यौहार का आनन्द उठाने के लिए देश-विदेश से बड़ी संख्या में श्रद्धालु इस समारोह में सम्मिलित हुए।

प्राकृतिक रंग के साथ पूज्यश्री के अमृतमय ज्ञान-निर्झर का सुहावना संगम इस होलिकोत्सव में शामिल लाखों लोगों ने देखा व आनन्दित-प्रफुल्लित हुए । जो इस अपूर्व-अनूठी रसधार से वंचित रह गये, वे 'होलिकोत्सव- २००७' के नाम से उपलब्ध वी.सी.डी. एक बार अवश्य देखें।

८-९ मार्च को कडाड़ा तालुका के दिवड़ा कॉलोनी (गुज.) में पूज्यश्री का पहली बार सत्संग आयोजित हुआ । ९ मार्च को सूरत की तरह यहाँ भी पलाश के फूलों से निर्मित प्राकृतिक रंगों की बौछार

संस्था समाचार

पूज्यश्री के करकमलों से हुई । अपनी फकीरी मस्ती में रंग बरसाते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''**तू तेरा उर-आँगन दे दे,**
मैं अमृत की वर्षा कर दूँ।
तू तेरा अहं दे दे,
मैं प्रभु का रस भर दूँ।

जो संसार में सुख चाहते हैं और उसीके पीछे लगे रहते हैं वे दुःखी रहते हैं । वास्तव में जो भगवत्प्राप्त महापुरुषों की शरण में जाते हैं उनके आगे दुःख नहीं टिकता और उनका सुख कभी नहीं मिटता।

जो वैदिक दीक्षा लेकर भक्ति करते हैं उनकी भक्ति क्लेशनाशिनी है, वे मनमुखी नहीं गुरुमुखी होते हैं। उनकी आधी साधना वैदिक दीक्षा लेनेमात्र से पूरी हो जाती है।''

गत वर्षों की भाँति इस वर्ष भी चेटीचंड के अवसर पर अमदावाद आश्रम में तीन दिवसीय 'ध्यान योग शिविर' संपन्न हुआ ।

१८ से २० मार्च तक चले इस शिविर में गुजरात के अलावा भारतवर्ष के विभिन्न प्रांतों से बड़ी संख्या में शिविरार्थी आये । साबरमती नदी के तट पर विशाल अस्थायी पंडाल में ब्रह्मवेत्ता पूज्य गुरुवर ने सत्संग-ज्ञान प्रसाद बाँटकर ध्यानरूपी तीर्थ में शिविरार्थियों को सराबोर किया ।

पूज्यश्री की तपस्या एवं लोक-मांगल्य की पावन स्थली... साबरमती का पावन तट... गूगल धूप से महकता सात्त्विक वातावरण... भगवन्नाम की मधुर धुन पर मानसिक जप करते हुए ध्यानस्थ हो पुण्यवर्धन करते शिविरार्थियों को पूज्यश्री ने मौन की महिमा बतायी ।

इस अवसर पर दिल्ली दरवाजा (अमदावाद) से एक जुलूस बैंड-बाजे के साथ झुलेलालजी आदि के स्वाँगों के साथ '**आयो लाल झुलेलाल...**' का उद्घोष करते, नाचते-गाते हुए आश्रम पहुँचा । जो सिंधी भाई-बहनों के चेटीचंड के आनंद-उल्लास एवं नववर्ष में प्रवेश की उमंग की खबर दे रहा था ।

चेटीचंड महोत्सव के निमित्त आध्यात्मिक खजाना पाने पहुँचे इन भाग्यशालियों तथा शिविरार्थियों को पूज्यश्री ने अंतर्यात्रा एवं आत्मिक शांति पाने की कुंजियाँ बतायीं व यौगिक प्रयोग कराये । ■

संत एकनाथजी महाराज की वाणी

संतवचनें ब्रह्मप्राप्ती। संतवचनें सायुज्य मुक्ती॥ ब्रह्मादी पदें येती। संतवचनें समोर॥
संतवचनें सर्व सिद्धी। संतवचनें समाधी॥ संतवचनें उपाधी। एका जनार्दनी तुटतसे॥

अर्थ : संत-वचनों (सत्संग) के श्रवण-मनन से ब्रह्मप्राप्ति होती है, सायुज्य (सादृश्य, जीवात्मा परमात्मा में लीन हो जाता है) मुक्ति मिलती है तथा ब्रह्मादि ऊँचे पद भी सुलभ हो जाते हैं। इसके प्रभाव से सर्व सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, समाधि का सुख मिलता है। इतना ही नहीं, एकनाथ महाराज कहते हैं कि सत्संग से त्रिताप नष्ट हो जाते हैं।

श्रवण कथेचें सादर । करिती नर सभाग्य ते ॥ सुख पावोनियां विश्रांती । मोक्षपदा जाती सुखरूप ॥

अर्थ : जो सौभाग्यशाली नर-नारी बड़े आदर के साथ कथा-सत्संग श्रवण करते हैं, वे आत्मिक विश्रांति का सुख पाकर सलामतीपूर्वक मोक्षपद पा लेते हैं।

गुरुमुखीचे कृपावचन। तयापुढे अमृतही गौण। वर्णिता वाचा होई मौन। सदैव सदावर्त भक्त करिती ग्रहण॥

अर्थ : गुरु के मुखारविंद से जो कृपा-वचन निकलते हैं, उनके आगे स्वर्ग का अमृत भी गौण हो जाता है। उनका वर्णन शब्दों में नहीं कर सकते, वहाँ वाणी मौन हो जाती है। भक्तगण सतत बँट रहे अमृत से भी श्रेष्ठ इस प्रसाद का सेवन करते हैं। ■

बालाघाट आश्रम (म.प्र.) एवं अमदावाद आश्रम गुरुकुल द्वारा १४ फरवरी को मनाया गया 'मातृ-पितृ पूजन दिवस'।

सावदा जि. जलगाँव (महा.) व विश्रामपुर जि. सरगुजा (छ.ग.) के विद्यार्थियों में सत्साहित्य-वितरण।

रेवाड़ी (हरि.) एवं धरमपुरा जि. रायपुर (छ.ग.) में विद्यार्थियों द्वारा निकाली गयी संकीर्तन यात्राएँ।

सलेमपुर जि. देवरिया (उ.प्र.) में बाल संकीर्तन यात्रा तथा आंबिवली जि. थाने (महा.) में प्रभातफेरी।

1 April 2007
RNP.NO. GAMC 1132/2006-08
Licenced to Post without Pre-Payment
LIC NO. GUJ-207/2006-08.
RNI NO. 48873/91
DL (C)-01/1130/2006-08.
WPP LIC NO. U (C)-232/2006-08.
G2/MH/MR-NW-57/2006-08.
WPP LIC NO. MH/MR/14/07.
'D' NO. MH/MR/TECH - 47/4/07

← नासिक (महा.) के विद्यार्थी शिविर में आयोजित विभिन्न प्रतियोगिताओं में यशस्वी हुए विद्यार्थियों को पूज्य बापूजी के करकमलों द्वारा पुरस्कार प्राप्त हुए।

योगासनों का अभ्यास करते हुए बालाघाट (म.प्र.) के विद्यार्थी तथा फरीदाबाद (हरि.) के विद्यार्थियों में सत्साहित्य-वितरण।

मनमाड जि. नासिक (महा.) में प्रतिमाह अनाज-वितरण तथा सुथारपाड़ा धरमपुर आश्रम (गुज.) में भंडारा।

Posting at Rishi Prasad PSO between 1st to 14th of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.